भारतीय इतिहास पर दासता की कालिमा

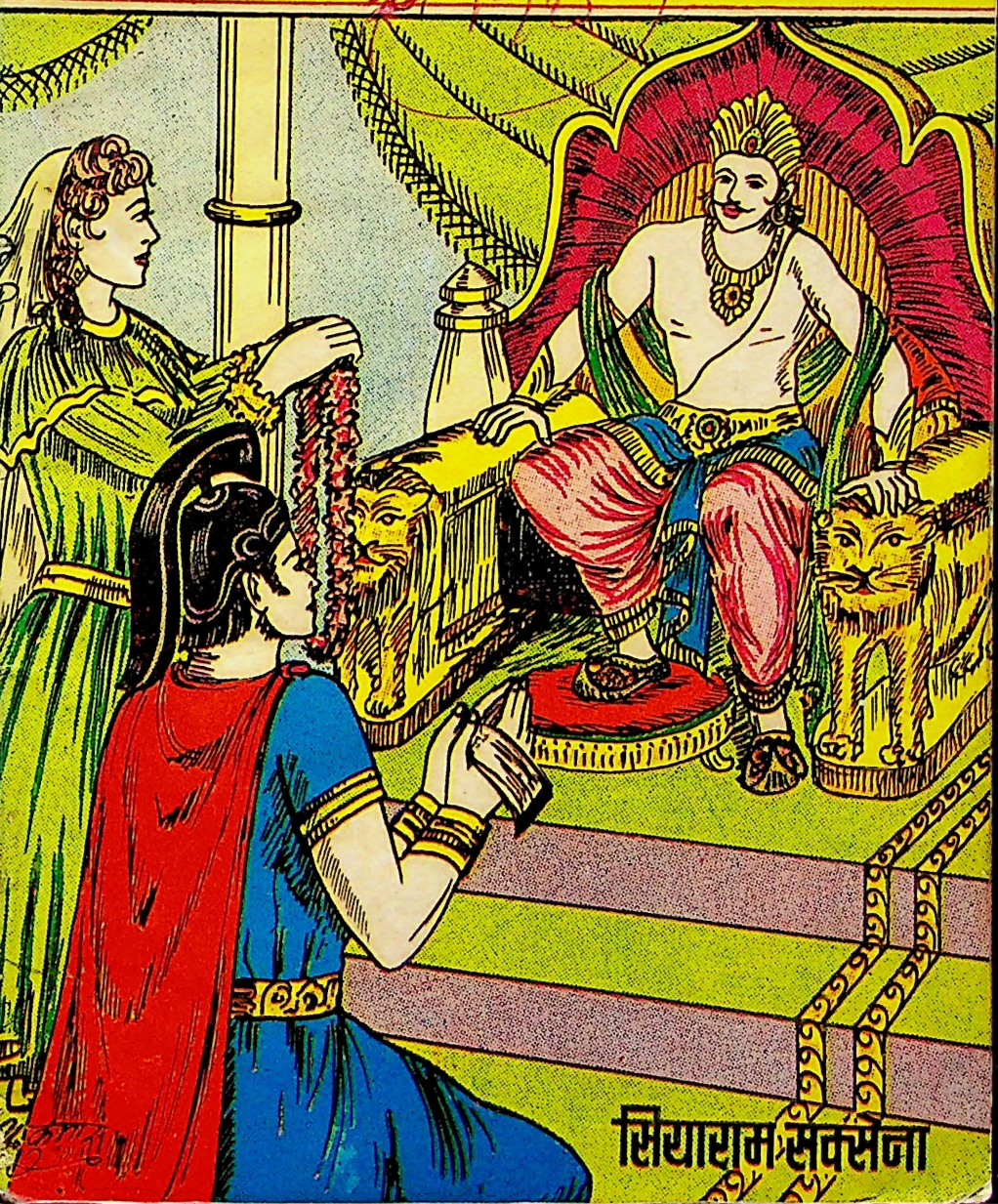

सियाराम सक्सेना

श्री इन्द्रेशजी को
सादर भेंट

P-28, 29, 47, 142

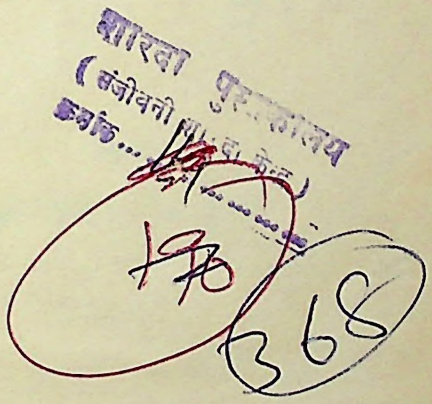

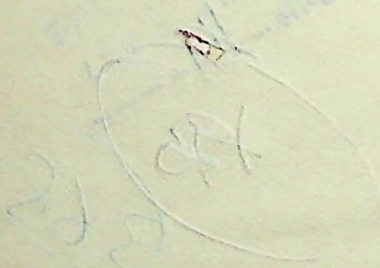

भारतीय इतिहास पर दासता की कालिमा

लेखक

सियाराम सक्सैना

प्रकाशक :

हिन्दी हितरक्षक समिति

७, बाग फरजाना, आगरा

प्रकाशक :
हिन्दी हितरक्षक समिति,
७, बाग फरजाना, आगरा

★

प्रकाशन तिथि :
वर्ष प्रतिपदा २०४६ वि०
(७ अप्रैल १९८९)

★

सर्वाधिकार :
© प्रकाशकाधीन

★

वितरक :
साहित्य भण्डार, १७३ वीर सावरकर नगर,
आगरा-१०

★

मूल्य : २० रुपये

★

मुद्रक :
मयूर प्रेस, ३७१/५ बद्रीनगर, दरेसी रोड
मथुरा—२८१००१

★

आवरण पृष्ठ :
पहचानिये—यह वर माला पहनने वाला राजा कौन है ?
चन्द्रगुप्त प्रथम या द्वितीय या समुद्रगुप्त ?

निवेदन

हिन्दी हितरक्षक समिति (प्रकाशन विभाग) का पहला पुष्प आपके कर-कमलों में है। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आपका स्नेह एवं बहुमूल्य सहयोग अवश्य प्राप्त होगा। कुछ त्रुटियों के लिये क्षमा प्रार्थी हूँ इसका कारण प्रकाशन के कार्य में कोई अनुभव न होना व सामान्य रुचि से हटकर इतिहास जैसे कठिन विषय का चयन करना है। शब्दों के व्याकरण के बारे में एक निवेदन अवश्य है, श्रद्धेय बाबूजी आँग्ल भाषा, फारसी व उर्दू के ज्ञाता हैं। परन्तु साथ-साथ निरन्तर लिखने की लगन के कारण आपातकाल के समय कारागार में रहकर हिन्दी सीखने का अभ्यास करते रहे। और इसी कारण कुछ भाषा सम्बन्धी कमियां अवश्य रह गई हैं। आशा है आगामी संस्करण में यह नहीं रहेंगी।

मैं अत्यन्त आभारी हूँ डा० मुनीश्वर जी का जिन्होंने अपने बहुमूल्य व्यस्त समय में से समय निकालकर निरन्तर मार्गदर्शन व उत्साहित किया।

आपके सुझावों का सदैव स्वागत है।

पूर्णलाल

विषय-क्रम

प्रस्तावना पृष्ठ ९-१८

अंग्रेजों का भारत में राज्यशील प्राप्त करने पर, उसको स्थिर बनाने की नीति, भारत का प्राचीनता में विश्वास देख ईसाइयों का आश्चर्य, जोन्स का, 'रायल ऐशियाटिक सोसायटी' का प्रारम्भ करना, और फरवरी १७९३ में सण्ड्रोकोट्टस व चन्द्रगुप्त मौर्य का एक होना बताना, अंग्रेजों का संस्कृत पढ़ने का उद्देश्य, मैकाले का स्वप्न, मैक्समूलर का वेदों के अनुवाद का उद्देश्य, और भारत के इतिहास में भ्रम पैदा करना, स्वतन्त्र भारत सरकार की नीति, फिर हिन्दू चेतना के साथ इतिहास की खोज।

अध्याय-१ संवत व तिथियां पृष्ठ १९-३०

ईसाई संवत का प्रारम्भ—भारत के चार संवत—प्रथम कलि संवत उसका आधार व पुष्टि, द्वितीय युधिष्ठिर संवत उसका आधार व पुष्टि तृतीय विक्रम संवत उसका आधार; चतुर्थ शक संवत, मकर संक्रान्ति व सूर्य संवत की खोज।

अध्याय-२ पुराणों का ऐतिहासिक महत्व पृष्ठ ३१-३८

भारत में इतिहास लिखने की प्राचीन परम्परा, शैली भिन्न, लेखक व्यासों की परम्परा, पुराणों की रक्षा के लिये सूत परम्परा, उनकी जांच, पुराणों की संख्या, पुराणों की वंशावलियां, उनके भेद, उनका काल, पुराणों में अशुद्धियां।

अध्याय-३ पुराणों अनुसार क्रमबद्ध इतिहास पृष्ठ ३९-४९

हस्तिनापुर का राज्य वंश, अयोध्या का कौशल वंश, मगध राज्य गिरिव्रज राजधानी का सम्पूर्ण इतिहास—वृहद्रथ वंश, प्रद्योत वंश, शैशुनाग वंश, नन्द वंश, मौर्य वंश, शुंग वंश, कण्व वंश तथा आन्ध्र वंश, आन्ध्र वंश की समाप्ति, गुप्त वंश की पाटलीपुत्र राजधानी बनना, गुप्त वंश के पश्चात् राज्यशक्ति का केन्द्र मालवा, विक्रमादित्य व शालिवाहन।

अध्याय-४ पुराणों के अतिरिक्त भारतीय इतिहास के स्त्रोत पृष्ठ ५०-५२

बौद्धों के इतिहास में गड़बड़ी, राजतरंगनी आदि।

अध्याय-५ जोन्स द्वारा भारतीय इतिहास की आधार शिला पृष्ठ ५३-६६

जोन्स का रायल एशियाटिक सोसाइटी बनाना, भागवत पुराण पढ़ना, जोन्स द्वारा पहली तालिका का जनवरी १७८८ में प्रकाशन, पर सन्तुष्ट न होने पर दूसरी तीसरी व चौथी तालिकाओं का निर्माण अन्त में ग्रीक इतिहास की सहायता से नई खोज की घोषणा, जो भारतीय इतिहास की आधारशिला बनी और भारत का प्राचीनतम इतिहास १३००–१४०० ईसा पूर्व में सिमिट गया, भारत जोन्स का आभार स्वतन्त्रता के पश्चात् नहीं भूला, कर्नल बिलफोर्ड द्वारा समर्थन।

अध्याय-६ ग्रीक इतिहासकार व भारत पृष्ठ ६७-७२

ग्रीक इतिहासक सिकदर के आक्रमण से पूर्व, आक्रमण के साथ, तथा पश्चात के—नाम—तथा उनके ग्रन्थ—व सबका निष्कर्ष।

अध्याय-७ (क) जोन्स के विचार का मैक्समूलर द्वारा पुष्टि व हिन्दू धर्म पर प्रहार पृष्ठ ७३-८३

वोडन द्वारा संस्कृत का अध्ययन इंगलैण्ड में प्रबन्ध, मैक्समूलर का वेदों का गलत अनुवाद कर ईसाईयत का भारत में प्रचार, राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगोर, ऋषि दयानन्द का प्रतिवाद, १८५७ का स्वतन्त्रता युद्ध १८५९ में मैक्समूलर का जोन्स का अनुमोदन कर राजनीतिक लाभ उठाना पर धर्मक्षेत्र में ऋषि दयानन्द व स्वामी विवेकानन्द द्वारा हिन्दू धर्म की विजय।

अध्याय-७ (ख) मैक्समूलर की अन्य घोषणाओं का प्रभाव पृष्ठ ८४-९३

मैक्समूलर द्वारा आर्य तथा द्रविड़ का भेद, आर्य बाहर से आये उन्होंने द्रविड़ सभ्यता को नष्ट कर भारत में पैर जमाया। आर्य व द्रविड़ भाषा का अन्तर, इसका प्रतिपाद, पर विष फैलता ही गया। मैक्समूलर द्वारा जोन्स की पुष्टि कि सण्ड्रोकोट्टस चन्द्रगुप्त मौर्य ही था यह मत भी प्रभावी बना रहा और भारत की प्राचीनता को बड़ा धक्का लगा।

अध्याय-८ राष्ट्र चेतना का विकास और
जोन्स के सिद्धान्त का विरोध पृष्ठ ९४-१०१

सन् १९०५ से १९४७ का काल—जापान की जीत, बंग-भंग, राष्ट्रीय जागरण, स्वतन्त्रता की मांग, स्वतन्त्रता के लिये आन्दोलन हिंसक व अहिंसक, नये इतिहास की रचना व लेखन, पर अंग्रेजी स्कूलों में वही स्मिथ का इतिहास चलता रहा, कुछ नवीन इतिहास निकले, कुछ ने जोन्स व मैक्समूलर को चुनौती दी सन् १९४७ से १९८८ का काल—हिन्दू चेतना जागी, और ऐतिहासिक गोष्ठियां प्रारम्भ हुईं, पुराणों को मान्यता मिलना प्रारम्भ हुआ और अंग्रेजों द्वारा लिखे इतिहास पर विश्वास हटा।

अध्याय-९ जोन्स के सिद्धान्त का पूर्ण रूप से खण्डन व
सच्चाई की खोज पृष्ठ १०२-१२४

पाश्चात द्वारा पुराणों के बारे भ्रम फैलाने का इतिहास लेखन पर प्रभाव, जोन्स की पुराण सम्बन्धी योग्यता पर प्रहार, वेंकटकेलम द्वारा पुराणों को पुनः मान्यता दिलाना, जोन्स की तालिका का पौराणिक तालिका से तुलना जोन्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त का खण्डन, मैक्समूलर के पुष्टीकरण का खंडन, ग्रीक इतिहासकारों के तथ्यों की विवेचना, सन्ड्रोकोट्टस की समुद्रगुप्त से तुलना।

अध्याय-१० अशोक महान पृष्ठ १२५-१४०

अशोक के इतिहास की विशेषता, भारत के इतिहास में तीन अशोक, अशोक महान के काल निश्चय की दो विधियां, शिला-लेखों द्वारा अशोक महान के काल का निर्णय, सन्ड्रोकोट्टस व अशोक की तुलना वीलर द्वारा, स्मिथ की घोषणा कि अशोक महान के शिला-लेखों से चन्द्रगुप्त मौर्य का काल निश्चित होना, प्रो० रेप्सन द्वारा विरोध, कृष्णमचार्य द्वारा समुद्रगुप्त व अशोक महान की तुलना।

अध्याय-११ इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता पृष्ठ १४१-१६०

इतिहास का राष्ट्र जीवन में महत्व, डा० ऐनीबेसन्ट का इस देश के बारे में विचार, मानवीय सभ्यता लाखों वर्ष पुरानी, जलप्लावन का काल व सिन्धु-घाटी सभ्यता का वेदों से सम्बन्ध, भारतीय समाज रचना, युरोपिय नेशनवाद से भेद, द्वारका की खोज, भारतीय इतिहास लेखन में गड़बड़ी, राष्ट्र-उत्थान के लिये नये व्यासों को आह्वान।

पुस्तक में दी तालिकायें

क्रम		पृष्ठ
१.	पुराणिक तालिका (औसत दिखाने वाली)	३६
२.	जोन्स द्वारा निर्मित तालिका I	५४-५५
३.	जोन्स द्वारा निर्मित तालिका II	५७
४.	जोन्स की तालिका I, II व III की तुलना	५९
५.	जोन्स की तालिका IV व II की तुलना	६०
६.	तालिका पुराण, जोन्स व स्मिथ का मत दिखाती है	९२
७.	जोन्स की पहली तालिका का पुराण से मुकाबला	१०६-१०७
८.	पुराणों के आन्तरिक जांच की दो तालिकायें	१०९-११०
९.	अशोक महान के शिला-लेख के राजाओं की तालिका	१३०
१०.	पुराणों, स्मिथ व आज के इतिहास की तुलनात्मक तालिका	१५५
११.	स्वतन्त्र भारत की सरकार सम्मत तालिका	१६

★ ✲ ★

संदर्भ ग्रन्थों की सूची

१. Is Sandrokottas Chandragupta Maurya ?
—By Shreeram Sathe.

२. इतिहास में भारतीय परम्पराएँ — गुरुदत्त

३. गुप्त सम्राट और उनका काल — उदयनरायण राय

४. प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, एवं दर्शन — एम. पी. श्रीवास्तव व श्रीमती शारदा अग्रवाल

५. प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग — सत्यकेतु विद्यालंकार

६. भारतीय इतिहास का सिंहावलोकन — श्री राघवाचार्य

७. Date of Mahabharat War the Problem.
—By Shreeram Sathe.

८. वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास — पुरुषोत्तम नागेश,ओक

हिन्दू संघठन के मन्त्र द्रष्टा–

परम पूज्य आद्य सरसंघचालक :

डा० केशव बलिराम हेडगेवार जी

की

जन्म शताब्दी के पुनीत अवसर पर

भारतीय इतिहास संकलन

समिति की नम्र भेंट

प्रस्तावना

इतिहास राष्ट्र की जीवन शक्ति है। राष्ट्र की आत्मा के दर्शन तथा उसके शरीर की रचना का ज्ञान इतिहास द्वारा ही सम्भव है। यदि इतिहास को विकृत कर दिया जाये, तब निश्चय ही राष्ट्र निर्बल हो जाता है, उसके प्रेरणा-स्रोत समाप्त हो जाते हैं। प्रेरणा के अभाव में वह पिछड़ जाता है तथा अन्ततोगत्वा समाप्त हो जाता है।

भारत में बहुत प्राचीन काल से इतिहास लिखने पर ध्यान दिया गया। रामायण, महाभारत, पुराण आदि संस्कृत-ग्रन्थ इसी उद्देश्य से लिखे गये परन्तु उनकी शैली भिन्न थी। बहुत-सा भारतीय-इतिहास से सम्बद्ध साहित्य मुस्लिम व बौद्धकाल में नष्ट हो गया। मुस्लिम आक्रांताओं के आक्रमणों में लाखों पुस्तकें जला दी गईं। ७०० वर्ष तक इस देश के धर्म को मिटाने के भरसक प्रयत्न चले परन्तु सफलता नहीं मिली और अन्त में मुगल-साम्राज्य मराठा-शक्ति द्वारा समाप्त हुआ।

मुगल-साम्राज्य के समाप्त होते ही अँग्रेज अपनी कूटनीति द्वारा सन् १७५७ई० में प्लासी युद्ध के बाद भारतके सत्ताधारी बनगये। मराठा-शक्ति के ह्रास के उपरान्त शासन की बागडोर उन्हीं के हाथों में आई।

अँग्रेजों ने १७५७ में प्लासी का युद्ध जीता। तदुपरान्त अँग्रेज सत्ताधारी के रूप में हमारे सम्मुख आये। मराठा-शक्ति के ह्रास के बाद तो शासन की बागडोर उन्हीं के हाथ में आई।

अँग्रेज विचार करने लगे कि इस विशाल-देश में थोड़े से अँग्रेज कैसे शासन कर सकते हैं। ७०० वर्ष के अथक प्रयत्न पर भी यह देश न मुसलमान बन सका, न उसकी संस्कृति नष्ट हो सकी। इस विशाल देश को

ईसाई बनाना भी सम्भव नहीं है और न इसकी संस्कृति उस समय तक नष्ट हो सकती है जब तक यहाँ के लोग वेद व प्राचीन संस्कृत-साहित्य पर श्रद्धा रखते हैं।

भारत में अँग्रेजी राज्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा स्थापित हुआ। यह १८ वीं ई० शताब्दी का समय था। उस काल में यूरोप तथा इंग्लैण्ड में ईसाई-धर्म का बोलबाला था। बाइबिल पर हर अँग्रेज का पूर्ण विश्वास ही नहीं, वह कट्टरता पूर्वक उसके जीवन की अङ्ग थी। वास्तव में उस काल में हर ईसाई अपने मजहब पर दीवाना था और वह कदापि स्वीकार नहीं कर सकता था कि बाइबिल से प्राचीन व श्रेष्ठ कुछ अन्य भी हो सकता है। बाइबिल में मानव-सृष्टि का उदय आदम व हव्वा से बताया है। जब वह दोनों स्वर्ग से निकाले गये तब सृष्टि आरम्भ हुई। बाइबिल में उनका जन्म-काल व जीवन-काल भी लिखा है।

सन् १६४२ में यूनान के एक प्रोफेसर लाइटफुट ने बाइबिल के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि सृष्टि की रचना प्रातः ९ बजे १७ सितम्बर ३९२८ ई० पूर्व हुई थी। पादरी यूशर ने १६५८ ई० में इस विषय पर पुनः विचार कर प्रोफेसर लाइटफुट के विचार का विरोध किया। वाद-विवाद चलता रहा। आयरलैण्ड के आर्चविशप (बड़े पादरी) ने १६६४ ई० में यह निर्णय दिया कि सृष्टि की रचना २३ अक्टूबर ४००४ ई० पूर्व प्रातः ९ बजे हुई, और जो कोई इस निर्णय के विरुद्ध विचार रखेगा वह धर्मद्रोही (Haretics) समझा जायेगा तथा उसे इस पाप के लिये दण्ड भोगना होगा। यह दण्ड उस काल में जीवित जला देना होता था और इनक्यूजीशन कहलाता था। अतः कोई भी ईसाई उस काल में सृष्टि की उत्पत्ति ६००० वर्ष से अधिक न सोच सकता था, न कह सकता था।

ऐसे समय में ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के न्याय विभाग में एक अँग्रेज विलियम जोन्स आया, उसे फारसी की एक प्राचीन पुस्तक 'दबिस्ता' मिली जिसमें अलेक्जेण्डर के आक्रमण से ६००० वर्ष ई० पूर्व का इतिहास दिया था और उसमें १५३ हिन्दू राजाओं के नाम थे। भारत में आकर उसको

भारतीय इतिहास-परम्परा का जब ज्ञान हुआ कि वह तो करोड़ों वर्ष की बात करते हैं तब वह और भी चकित हुआ। इन सब बातों पर अविश्वास कर उसने कलकत्ते में १७८४ ई० में एक 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' बनायी जिसका उद्देश्य भारतीय-इतिहास का ठीक अध्ययन करना था। इस सोसाइटी का वह स्वयं प्रधान व मंत्री भी रहा। उसे एक भागवत पुराण की प्रति भी मिल गई और उसने एक पण्डित की सहायता से उसका अध्ययन भी किया। पर एक सच्चे ईसाई के समान वह कैसे विश्वास कर सकता था कि भारत का इतिहास इतना पुराना है जो बाइबिल को झूठा सिद्ध करता है। अतः उसने यूनान के प्राचीन इतिहास को खोजा और २८ फरवरी १७९३ ई० को 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' की साधारण विचार-गोष्ठी में (जिसमें सब अँग्रेज ही होते थे) यह घोषणा कर दी कि यूनान के प्राचीन इतिहास में जो सेण्ड्रोकोट्टस नाम आता है वह चन्द्रगुप्त मौर्य है और इस प्रकार भारतीय-इतिहास की गणना का एक आधार मिल गया कि चन्द्रगुप्त मौर्य का काल करीब ३२७ ई० पूर्व है। विलियम जोन्स उस समय कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश थे। उन्होंने उस समय, अपनी खोज का कोई तर्क या आधार नहीं दिया। केवल, इतना कहा कि अपने इस कथन के पक्ष में तर्क वह एक अन्य लेख में देंगे। कुछ दिनों पश्चात् जोन्स का देहान्त हो गया,अतः वह अपनी घोषणा का कोई तर्कपूर्ण प्रमाण नहीं दे सके।

ईस्टइण्डिया कम्पनी का एकफौजी अफसरवोडन सन् १८०७ ई० में बहुत-सा धन कमाकर सेवा मुक्त हुआ और उसने सन् १८११ ई० में देहान्त से पहले १५ अगस्त १८११ को २५,००० पौंड की राशि आक्सफोर्ड विश्व-विद्यालय को वसीयत द्वारा प्रदान की, कि संस्कृत विभाग खोला जाय, जिसका उद्देश्य भारतवासियों को ईसाई-मत में लाना हो।

अतः इंग्लैण्ड में संस्कृत का पढ़ना इस उद्देश्य से प्रारम्भ हुआ कि भारत को ईसाई बनाना है। ईसाई-धर्म की श्रेष्ठता दिखाकर हिन्दू-धर्म व वेदों पर से भारतीयों की श्रद्धा समाप्त करना है। सर मोनियर विलियम व एच० एच० विलसन ऐसे ही 'वोडिन-विद्वान्' थे। इसी उद्देश्य से मैकाले साहब ने मैक्समूलर को ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में स्थान

दिलाया। वह भी 'वोडिन-प्रोफेसर' बनने के प्रत्याशी थे। परन्तु विलियम प्रोफेसर चुन लिये गये।

अतः भारतीय-इतिहास के लिखने व उसको राज्य-शक्ति के द्वारा मान्यता प्रदान कराकर, भारतीयों को क्या बनाना है—उसमें विलियम जोन्स से प्रारम्भ हो मैकाले, मैक्समूलर, और अन्य वोडिन-प्रोफेसरों का जो उद्देश्य था। वह उस समय के पत्र-व्यवहार से स्पष्ट होता है।

भारत में अँग्रेजी शिक्षा की योजना मैकाले की थी। मैकाले इस योजना के बारे में अपने पिता को लिखे पत्र में लिखता है :—

(पत्र अँग्रेजी में है, उसका अनुवाद नीचे दिया जा रहा है)

कलकत्ता
ता० १२ अक्टूबर १८३९

प्रिय पिताजी,

हमारे अँग्रेजी स्कूल अद्भुत रूप से सफल हो रहे हैं—इस शिक्षा का हिन्दुओं पर बहुत विचित्र प्रभाव हुआ है। कोई भी हिन्दू जिसने हमारी शिक्षा प्राप्त कर ली अपने धर्म पर स्थिर नहीं रहा। कुछ कहने मात्र को अपने को हिन्दू कहते हैं, कुछ ईसाई बन जाते हैं। मेरा विश्वास है कि यदि हमारी शिक्षा योजना चलती रही तो तीस वर्ष बाद बंगाल की उच्च-जातियों में कोई भी मूर्तिपूजक नहीं रहेगा, और यह परिणाम बिना सीधा धर्म परिवर्तन किये हुए होगा जिससे धार्मिक स्वतन्त्रता की नीति को कोई ठेस न पहुँचेगी यह सब स्वाभाविक रूप से ज्ञान-प्रसार व विचार प्रोत्साहन से होगा। मुझे इससे असीम प्रसन्नता है.....

सदैव आपका प्यारा
टी० बी० मैकाले

उधर मैक्समूलर वेदों तथा अन्य शास्त्रों के अनुवाद द्वारा यह सिद्ध करने पर लगे थे कि वह सबसे प्राचीन होते हुए भी केवल गड़रियों के गीत हैं, वह आदि-मनुष्य के अपरिपक्व मस्तिष्क की कथाएँ व कल्पनाएँ हैं। यह ऐसा क्यों कर रहे थे उनके कुछ पत्रों से पता चला है।

मैक्समूलर सन् १८६६ ई० में अपनी पत्नी को पत्र (अंग्रेजी में हैं) में लिखते हैं—

'वेद का अनुवाद और मेरा यह ग्रन्थ भारत के भाग्य को बहुत काल तक प्रभावित करेगा.....यह उनके धर्म का मूल है और उन्हें यह दिखाना है कि यह मूल (जड़) कैसा है, इसी से पिछले तीन हजार वर्षों में निर्माण हुए धर्म को उखाड़ा जा सकता है।'

एक अन्य पत्र में मैक्समूलर अपने पुत्र को लिखते हैं:—

'यदि तुम प्रश्न करो कि कौन-सी धर्म पुस्तक सबसे उच्च है, तो मेरा उत्तर है 'नई बाइबिल' (New Testament), उसके बाद कुरान का नम्बर है जो आचार की शिक्षा देता है और 'नई बाइबिल' का रूपान्तर है। इसके पश्चात् 'पुरानी बाइबिल', फिर दाक्षिणात्य-बौद्ध त्रिपिटक ..... वेद व प्रवस्ता है।

मैक्समूलर इसी विषय पर उस समय के भारत सचिव, ड्यूक ऑफ आर्गाइल को १६ दिसम्बर १८६८ में पत्र में लिखते हैं :—

'भारत का प्राचीन धर्म मरणासन्न है और यदि उसका स्थान ईसाई धर्म नहीं लेता, तो दोष किसका है।'

मैक्समूलर श्री एन० के० मजुमदार, एक ब्रह्मसमाजी, को लिखते हैं :—

'आप तो जानते हैं कि कितने वर्षों से मैं भी आप ही के समान भारत में प्रचलित धर्म को शुद्ध करने में लगा हुआ हूँ, जिससे वह अन्य धर्मों के समान विशेष रूप से ईसाई धर्म जैसा पवित्र बन जाये। मुझे आप

विशेष रूप से लिखें कि आपको तथा आपके देशवासियों को ईसा के धर्म में आने में क्या कठिनाई है।'

इसी काल में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदभाष्य लिखा और मैक्समूलर इत्यादि पाश्चात्य लेखकों को चुनौती दी कि वह आयें और भाष्यों पर वाद-विवाद करलें। मैक्समूलर को इसकी सूचना थी। अपने एक पत्र में जो २० जनवरी १८८२ ई० को मैक्समूलर एक व्यक्ति विरयाम जी को लिखते हैं:—'दयानन्द सरस्वती जैसे लोगों से सावधान रहना चाहिये। उन्होंने वेदों को बेकार का महत्व दे रखा है और उसके ऐसे अर्थ लगा रहे हैं जो उसमें नहीं हो सकते और यह प्रयत्न कर रहे हैं कि वेद बहुत उच्च व वैज्ञानिक विचारों के भण्डार हैं।

मैक्समूलर द्वारा लिखित साहित्य का उस काल में क्या प्रभाव हुआ इस पत्र से प्रगट होता है जो उनके एक मित्र पी० आई० पासिस ने उन्हें लिखा :—

'भारत को ईसाई बनाने के प्रयत्न में तुम्हारा साहित्य एक नवीन युग लाने वाला सिद्ध होगा, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय आपका सदा ऋणी रहेगा, तथा वह गर्व कर सकेगा कि उसने आप को स्थान दिया। भारत को ईसाई बनाने में आपके साहित्य का एक विशेष व महत्वपूर्ण स्थान सदा ही रहेगा और हमें यह सोचकर गर्व होता है कि हमारा धर्म भारत के झूठे धर्म से कितना ऊँचा है।'

इस प्रकार अँग्रेजों द्वारा लिखित भारतीय-इतिहास हमारी दासता का अभिशाप है, जिसे कूटनीतिज्ञ अँग्रेज-शासकों ने विशेष राजनीतिक उद्देश्य से लिखवाया। यह केवल भारतीय धर्म संस्कृति पर ही आघात न था, वह भारत को सदा के लिए दास बनाने की योजना के अङ्ग के रूप में लिखा गया जिससे कि काले-अँग्रेज उत्पन्न हो सकें।

अँग्रेज-सरकार ने ऐसे विद्वान् चुन-चुनकर इतिहास लिखने में लगाये, जो भारत की संस्कृति व धर्म को तुच्छ प्रकट कर सकें, तथा उसके

इतिहास को इतना विकृत करके दिखावें कि भारत का कोई इतिहास ही नहीं है। यह एक देशनहीं उपमहाद्वीप है यहाँ तो अनेकआक्रमणकारी आये और बसे, आर्य भी उनमें से ही एक हैं।

इस प्रकार के इतिहास लिखने वालों में लैथब्रिज व मैक्डोनाल्ड के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, उन्होंने लिखा कि भारतीयों को इतिहास लिखना नहीं आता था. कोई प्राचीन पुस्तक विश्वसनीय नहीं है। इस कारण इतिहास जानने के लिए शिलालेख व पुराने खण्डहरों पर अनुमान लगाना पड़ता है। ये इतिहासज्ञ-अँग्रेज सरकार के वेतनधारी, कालेजों के प्रोफेसर, काले या गोरे अँग्रेज रहे।

इनके अतिरिक्त कुछ स्वतन्त्र विचार के लोग भी निकले, उन्होंने इन विकृतियों की ओर लोगों का ध्यान खींचा, पर सदा सरकार की ओर से विरोध व अवहेलना के पात्र रहे, और उनकी पुस्तकें पाठ्य-क्रम में न आ सकीं।

देश स्वतन्त्र हुआ और आशा लगी कि देश का इतिहास जो राष्ट्र का प्राण होता, अब ठीक कर लिया जायेगा, परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यह आशा फलीभूत न हुई। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू तथा उनके वंशधर इंग्लैण्ड के उन गुरुओं द्वारा शिक्षित रहे हैं जो भारत तथा भारतवासियों (हिन्दुओं) की निन्दा करने में अपना लाभ मानते थे अतः भारत का शासक-वर्ग भारत के ज्ञान व वैभव से अपरिचित,उसी मार्ग का अनुयायी बना रहा जो विदेशी शासकों ने निर्धारित किया था।

स्वतन्त्र भारत में भी इतिहास-लेखन का कार्य ईमानदारी पूर्वक नहीं हो सका इसका मुख्य कारण थे देश के प्रथम शिक्षा मंत्री—मौलाना अब्दुल कलाम आजाद। मौलाना आजाद अरब में जन्मे—उन्होंने काहिरा (मिश्र) में शिक्षा प्राप्त की तथा वह भारत में इस्लाम का प्रचार करने आये थे। मौलाना की हिन्दी तथा संस्कृत विरोधी-नीति सर्वविदित है। जब तक वह भारत के शिक्षा-मंत्री रहे तब तक हिन्दी टाइपराइटर का

की-बोर्ड निश्चित नहीं हो सका और उनका विभाग हिन्दी को उचित स्थान प्रदान करने में बाधक बना रहा।

सन् १९४८ में मौलाना आजाद ने एक शिक्षा आयोग नियुक्त किया, जिसके दो सदस्य अँग्रेज थे, और अन्य सदस्य अँग्रेजी-मस्तिष्क वाले भारतीय सदस्य थे, यही कारण था कि शिक्षा की नीति में कोई परिवर्तन नहीं आ सका।

हिन्दी भाषा में ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थ लिखाने का कार्य मुसलमानी संस्थाओं को दिया गया।

सन् १९५० में नवम्बर मास में युनेस्को (Unesco) की सहायता से मौलाना आजाद की अध्यक्षता में एक मीटिंग हुई जिसमें डॉ० रमेशचन्द्र मजुमदार व श्री अल्तेकरजी उपस्थित थे और एक तालिका बनायी गई जिसके आधार पर इतिहास लिखा जावेगा—

ऋग्वेद का काल	२०००—१५०० ई० पूर्व
पुराने उपनिषद	८००— ५०० ई० पूर्व
चरक	१०० ई० के उपरान्त
वाङ्-ज्योतिष	५०० ई० पूर्व
धर्म-सूत्रों का काल	६००— २०० ई० पूर्व
महाभारत मनुस्मृति व रामायण	२०० ई० के पश्चात्

स्वराज्य आने पर इतिहास लिखने के लिए चार प्रकार के प्रयत्न हो रहे थे।

(१) सरकार द्वारा Peoples History के रूप में जिसका वर्णन ऊपर किया है।

(२) इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस द्वारा

(३) श्री मुंशी द्वारा—जिसमें डॉ० मजुमदार थे

(४) कुछ स्वतन्त्र जैसे, भगवत दत्त, कोटा व्यंकटाचलम

आदि जो हिन्दू ग्रंथों के आधार पर इतिहास लिख रहे थे। श्री भगवत दत्त ने राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद से प्रार्थना की कि सब मिलकर विचार-विमर्श-करके तथ्यों की जांच के उपरान्त इतिहास लिखें, परन्तु ऐसा हो न सका।

कोटा व्यंकटाचलम ने 'जिन्होंने २५ पुस्तकें भारतीय इतिहास पर लिखी हैं, १९८१ में मद्रास में हुए इंडियन हिस्टरी कांग्रेस से प्रार्थना की कि भारतीय इतिहास की गणना पर पुनर्विचार करने के लिये एक विशेष समिति बनायी जाये परन्तु उन्हें भी सफलता न मिली।

अतः यह बात स्पष्ट हो गई है कि भारत के इतिहास व संस्कृति के प्रश्न पर वर्तमान सरकार भी उतनी ही विदेशी है जितनी कि अंग्रेजी सरकार थी, पाश्चात्य-पद्धति के विद्वान झूठ व भ्रम का अम्बार खड़ा कर रहे हैं। पहले वह अंग्रेजों की सरकार के आश्रय पर जीवित थे, अब वह काले-अंग्रेजों की सरकार पर आश्रित हैं और उनकी लिखी पुस्तकें विश्वविद्यालयों व स्कूलों में पढ़ाई जाती हैं।

भारत का इतिहास मुख्यतया भारतीय धर्म-शास्त्रों, रामायण, महाभारत व पुराणों पर आधारित होना चाहिये। विदेशियों के कथन, लेख दूसरी श्रेणी के प्रमाण हो सकते हैं। शिला-लेख, मुद्राएँ, तथा पुरातत्व की खुदाई स्वयं नहीं बोलते हैं, वह तो पुष्टि-प्रमाण हो सकते हैं।

डा० केशव बलिराम हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना १९२५ ई० में की जिसका उद्देश्य हिन्दू-राष्ट्र को पुनः वैभव पर ले जाना रखा। माननीय उमाकान्त केशव जिनको हम माननीय बाबा साहब आप्टे के नाम से जानते हैं और जिनका जन्म १९०३ ई० में हुआ, वह परम पूज्य डाक्टर साहब के सम्पर्क में १९२६ से आये, और १९३१ से जीवन पर्यन्त संघ के प्रथम प्रचारक के रूप में काम किया। उनके बौद्धिक भारतीय प्राचीन इतिहास से लिये उदाहरणों से भरे होते थे, उनका देहान्त १९७२ ई० में हुआ। १९७३ में बाबा साहब आप्टे स्मारक-समिति का गठन किया गया, और उस समिति ने माननीय बाबा साहब को उचित श्रद्धांजलि देने के लिये भारतीय इतिहास संकलन-

योजना का श्रीगणेश किया। यह कार्य मा० मोरो पंत पिंगले "जो राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के एक वरिष्ठ कार्यकर्त्ता व प्रचारक हैं" की देखभाल में हो रहा है। इस योजना के अधीन कई ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। सन् १९८५ में माननीय श्रीराम साठे का एक ग्रंथ अंग्रेजी में 'क्या सन्ड्रोकोट्टुस चन्द्रगुप्त मौर्य था ?' प्रकाशित हुआ। माननीय माधवराव देवले से जो हमारे क्षेत्रीय-प्रचारक हैं, से १९८६ में यह पुस्तक किसी समय पढ़ने को मिली। मेरा विषय कभी इतिहास नहीं रहा, मैं एक साधारण B.Sc. कर कानून का विद्यार्थी रहा। मुझे इस पुस्तक ने बहुत प्रभावित किया। इस की मैं ने कई इतिहास के विद्यार्थियों, स्कूल व कालिज-अध्यापकों से चर्चा की, मैं चाहता था कि जन-साधारण तक यह पहुँचे, कालिजों में विद्यार्थी व प्रोफेसर इसको पढ़े, पर कठिनाई मालूम हुई कि उत्तर प्रदेश में अब अंग्रेजी पढ़ते तो सब हैं, पर परीक्षा के लिये। वह अब अंग्रेजी में लिखी पुस्तकों का अध्ययन नहीं कर सकते। फिर यह पुस्तक तो उन्हीं लोगों की समझ में आ सकती है जो इतिहास में रुचि रखते हों व कुछ ज्ञान भी हो।

अतः मैंने इसका सीधा अनुवाद न कर अपने ढंग से हिन्दी पढ़ने वालों के लिये, इसी पुस्तक को लिखना प्रारम्भ किया है। आगरा में संघ का प्रान्तीय-कार्यालय माधव-भवन है जिसमें एक पुस्तक-भण्डार भी चलता है। उसमें सब हिन्दी की ही पुस्तकें उपलब्ध होती हैं क्योंकि वहाँ उसी की मांग है; उसके प्रबन्धक अपने एक प्रचारक श्रीपूरनजी हैं उनकी माँग थी कि यह पुस्तक हिन्दी में लिखी जाये, अतः यह काम मैं अवकाश मिलने पर कर रहा हूँ।

१२-२-१९८८

सियाराम

— ✱ —

अध्याय १

(संवत् व तिथियां)

भारत में ईसा-संवत् अंग्रेजों के काल से चल रहा है। यह संवत् ईसा के जन्म से प्रारम्भ माना जाता है। पर इसका प्रचलन स्वयं युरोप में प्रारम्भ के ६०० वर्ष तक नहीं है। आज १९८८ ई० है। सन् ८१६ ई० में चेलसी नगर में पादरियों का एक सम्मेलन हुआ, उसमें निर्णय लिया गया कि सब पादरियों को ईसा-संवत् का प्रयोग प्रारम्भ करना चाहिये। इस निर्णय के उपरान्त भी यूरोप के जन-साधारण में यह प्रचलित न हो सका। इस को जर्मनी के एक राजा चार्ल्स तृतीय ने ८७९ ई० में प्रयोग करना प्रारम्भ किया। तब धीरे-धीरे यह यूरोप में प्रचलित हुआ। इस को प्रयोग में लाये हुए लगभग एक हजार वर्ष ही हुए हैं। १९८८ ई० में ईसा के जन्म को १९८८ वर्ष बीतना माना जाता है। उससे पूर्व काल को ईसा-पूर्व (B.C.) से प्रदर्शित किया जाता है।

भारत में प्राचीन काल से ही अनेक भारतीय-संवतों का प्रयोग होता है। एक सृष्टि-संवत् है जो संकल्प में पढ़ा जाता है। भारत के पंचांगों में युधिष्ठिर-संवत्, कलि-संवत्, विक्रम-संवत्, व शक-संवत् सदा से प्रयोग में चले आ रहे हैं।

विक्रम-संवत् व शक-संवत् के प्रचार से कलि-संवत्, व युधिष्ठिर-संवत् लिखना लोगों ने छोड़ दिया। परन्तु १८ वीं शताब्दी या यह कहा जाये कि १९ वीं ईसा-शताब्दी तक समस्त भारत के विद्वानों व जन-साधारण का पूर्ण विश्वास था कि कलियुग को प्रारम्भ हुए लगभग ५००० वर्ष हो चुके हैं। पुराणों में दिया हुआ कलि-संवत् ठीक है। युधिष्ठिर ने

३६ वर्ष राज्य किया, कृष्ण के देहावसान पर उन्होंने परीक्षित को सिंहासन पर बैठाया। परीक्षित के राज्य से ही कलियुग प्रारम्भ हुआ।

पर अंग्रेजों ने आकर यह भ्रम फैलाया कि यह सब इतिहास वास्तविक नहीं काल्पनिक है और कलि-संवत् या युधिष्ठिर-संवत् कुछ नहीं हैं, विक्रम-संवत् व शक-संवत् क्योंकि प्रयोग हो रहे थे, अतः उनका ईसा-संवत् से वह तुलना करने में कुछ बिगाड़ न सके। पर कुछ छोटे संवतों को उन्होंने बिगाड़ दिया जैसे गुप्त-संवत्। उन्होंने चन्द्रगुप्त मौर्य के काल को ३२० ईसा-पूर्व स्थापित कर सब इतिहास ही पलट दिया।

यह कलि-संवत् क्या है? कलियुग कब से प्रारम्भ हुआ? युग किसे कहते हैं? यह कुछ मौलिक प्रश्न हैं, जिनका जानना आवश्यक है। युगों की गणना नक्षत्रों की गतियों से की गई है। ज्योतिष का प्रारम्भ वेदों से होता है। यजुवद में चारों युगों के नाम दिये हुए हैं— सतयुग, त्रेता, द्वापर व कलि। प्राचीन-काल में सूर्य-सिद्धान्त नाम का एक ग्रन्थ था। ज्योतिष-शास्त्र का यह महान ग्रन्थ सतयुग के अन्तकाल में लिखा गया, परन्तु नष्ट हो गया। उसी के आधार पर दूसरा 'सूर्य-सिद्धान्त' बना और उसमें बहुत-सी बातें प्राचीन ग्रन्थ की ही लिखी हैं।

इस सूर्य-सिद्धान्त का एक पद है—

अस्मिन् कृतयुगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहाः।
विना तु पादमन्दोच्चान्मेषादौ तुल्यतामिताः॥

सूर्य० १-५७

कृतयुग (सतयुग) के अन्त में मन्दोच्च को छोड़कर सब ग्रहों का मध्य स्थान मेष में था।

इसी प्रकार कलियुग के विषय में लिखा है कि इसके आरम्भ में सूर्यादि सातों ग्रह एक ही राशि में थे।

यह घटना प्रत्यक्ष में महाभारत-युद्ध के बाद देखी गई। महाभारत में ऐसा लिखा मिलता है—

ततो दिनकरैर्दीप्तैः सप्तभिर्मनुजाधिप।
पीयते सलिलं सर्वं समुद्रेषु सरित्सु च॥

वन० १८८/६७

युग की समाप्ति पर सातों सूर्य एक राशि में आ जाते हैं और तब ऊष्मा इतनी बढ़ जाती है कि पृथ्वी का सब जल सूख जाता है।

यूरोप के प्रसिद्ध ज्योतिषी बेली ने गणित द्वारा ग्रहों की गति लेकर यह निकाला कि सातों ग्रह कितने काल पहिले एक सरल रेखा में आये थे और उसकी गणना का वृतान्त Theogony of the Hindus by Count Bjornotjerna के पृष्ठ ३२ पर लिखा है—

"हिन्दुओं के ज्योतिष-शास्त्र की गणना में कलियुग का आरम्भ ईसा के जन्म से ३१०२ वर्ष पहले २० फरवरी की रात को २ बजकर २७ मिनट और ३० सैकैन्ड पर हुआ था। वे (हिन्दू) कहते हैं कि उस समय नक्षत्रों का एक स्थान पर संग्रह हो जाता है। ब्राह्मणों की गिनती इतनी ठीक है कि हमारे ज्योतिषियों की गणना के अनुसार सत्य बैठती हैं। इसका अर्थ यह है कि उन्होंने भी नक्षत्रों की गति को देखकर ही गणना की है। अन्यथा इतनी ठीक न होती।"

अर्थात् यह स्पष्ट है कि कलि-संवत् ३१०२ ईसा-पूर्व से चलता है। यह काल्पनिक चीज नहीं है।

(१) इसका प्रयोग भारत में प्राचीन-काल से होता चला आया है। प्रसिद्ध ज्योतिष व गणित-विद्वान आर्यभट्ट ने इसका प्रयोग किया है, यह तो विलियम जोन्स भी स्वीकार करते हैं। अपनी विकृत काल-गणना से भी वह आर्यभट्ट को १५०० वर्ष ऊपर होना मानते हैं।

(२) चालुक्य कुल के महाराज सत्याश्रम पुलकेशी द्वितीय का रविकीर्ति द्वारा संस्कृत में रचित एक शिला-लेख दक्षिण का कालग्दी बीजापुर विषयान्तर्गत सेहोली स्थान में मैगुटी नामक एक जैन मन्दिर में मिला है उस पर लिखा है कि ३७३५ वर्ष के कलि के व्यतीत होने पर यह शिलालेख लिखा गया।

त्रिंशत्तु त्रिसहस्त्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषु पञ्चसु ॥
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम ॥

जब भूभृज संवत् ५५६ था (शक-संवत्)

अर्थात् इस गणना से आज कलि-संवत् ५००० से ऊपर है।

३७३५—५५६+१९१०=५०९० कालि सं० आजकल १९८८ ई० में

(३) 'राजावली' महाराज गुलेर के राजवंश के संग्रहालय में एक कांगड़ी-भाषा का हस्तलेख मिला। यह हस्तलेख लेखक बलीराम ने राजा ध्यानसिंह के वंश में उत्पन्न किसी राजा की आज्ञा से पुस्तक के रूप में लिखा। यह बलीराम, राजा ध्यानसिंह तथा संसारचन्द के दरबार में रहे थे। श्रीबलीराम ने यह पुस्तक मौखिक रूप से बोलकर एक लेखक टहेलदास से लिखायी।

सन् १९६६ ई० में पंजाब सरकार ने कांगड़ी-भाषा के विद्वान श्रीगौरीशंकर M. A., D. Litt (oxon) तथा श्री रघुनन्दन शास्त्री M.A,M.O.L द्वारा सम्पादित करायी तथा हिन्दी-विभाग द्वारा प्रकाशित करायी गयी।

इस पुस्तक में युधिष्ठिर की मृत्यु के पश्चात् से शाह आलम तक के वंश व राजाओं के राज्य-काल व राजाओं की गिनती, तथा कुल की गणना दी उस समय तक ४८३४ वर्ष, ३ माह, ११ दिन की गणना दी गई है।

शाह आलम से अब तक (१९८८ ई०) के वर्ष जोड़ने पर ५००० से अधिक वर्ष होते हैं।

४८३४+२५+(१९८८-१७६१)=५०८६ कलि-संवत्। शाह आलम संभवतः १७६१ से ३ वर्ष पहिले सिंहासन पर बैठा।

(४) विश्व हिन्दू परिषद द्वारा अभी ३-४ वर्ष पहिले जो एकात्मता-यज्ञ के नाम से गंगा-माता, व भारत-माता की रथ-यात्राएँ निकाली गयी

थीं उसमें कलि-संवत् ५०८५ दिया था। उसका देश भर में स्वागत हुआ। ऐसा लगा जैसे अपना भूला संवत् पुनः लोगों को याद हो आया हो और तब से बहुत से लोग विक्रम-संवत्, या शक-संवत् के साथ कलि-संवत् (युगाब्द) के नाम से देते हैं। पंचांगों में तो यह सदा से दिया जाता है। इसे कौन काल्पनिक कह सकता है।

दूसरा संवत् जो प्रयोग में आता था वह था युधिष्ठिर संवत्। युधिष्ठिर-संवत् क्या है? कब से प्रारम्भ हुआ? यह जानना भी आवश्यक है। महाभारत के अनुसार युद्ध के ३६ वर्ष बाद कृष्ण परमपद को प्राप्त हुए। कृष्ण के देहावसान की सूचना जब युधिष्ठिर को मिली, तब सभी पाण्डव राजपाट छोड़ वन में तपस्या को चले गये और अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को सिंहासन पर आसीन कर गये। अतः युधिष्ठिर का राज्य-काल ३६ वर्ष कुछ महीने रहा। महाभारत का युद्ध केवल १८ दिन हुआ था। और कृष्ण के संसार से जाने पर कलियुग का प्रारम्भ हुआ। परीक्षित का सिंहासन पर बैठना कलि-संवत् के प्रथम वर्ष में हुआ। अर्थात् परीक्षित का राज्यारोहण ३१०२ ईसा-पूर्व हुआ।

महाभारत के पश्चात् युधिष्ठर का राज्यारोहण कलियुग के प्रारम्भ होने से ३६ या ३७ वर्ष पूर्व हुआ।

भागवत-पुराण भी कलियुग का प्रारम्भ कृष्ण के संसार से चले जाने पर मानता है।

यास्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तास्मिन्नेव तदाहनि।
प्रतिपन्नं कलियुगं यिति प्राहुः पुराविदः॥

अतः युधिष्ठिर संवत् = कलि-संवत् + ३६ वर्ष
= ३१०२ + ३६
= ३१३८ ईसा-पूर्व से प्रारम्भ

इसको महाभारत से प्रारम्भ मानते हैं। इसका प्रयोग भी प्राचीन-काल से होता चला आ रहा है।

(१) समस्त पुराण महाभारत-काल (युधिष्ठिर-संवत्) से राज्य-

कालों की गणना करते हैं। किस राजा ने कितने वर्ष राज्य किया, यह जोड़कर हम महाभारत काल ३१३८ ईसा-पूर्व से समय निकाल सकते हैं।

(२) महर्षि दयानन्द सरस्वतीने भी सत्यार्थ-प्रकाश में, अपने काल में ऐतिहासिक पत्रिका से लेकर युधिष्ठिर से पृथ्वीराज तक दिल्ली के राजाओं की काल-गणना दी है, उसको यदि आज के काल तक जोड़े तो वही ५१०० वर्ष से ऊपर हैं पता लगाते हैं।

(३) महात्मा प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने बद्रीधाम की अपनी यात्रा का वृत्तान्त पुस्तक के रूप में छापा है। उसमें आदिशंकराचार्य 'जिन्होंने चारों मठों का पुनः जीर्णोद्धार किया, का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि श्रीशंकराचार्य के चार प्रधान शिष्य थे। (इन चारों की मूर्तियाँ श्री बद्रीनाथ मन्दिर में शंकर के चारों ओर रक्खी हुई हैं) इन्हीं चारों को उन्होंने चारों मठों का प्रथम आचार्य या मठाधीश बनाया। (यह भी शंकराचार्य लिखित ग्रंथ में मिलता है)।

(क) शारदा-पीठ (द्वारिका)—इसके प्रथम आचार्य सुरेश्वर स्वामी हुए।

(ख) गोवर्धन (जगन्नाथ पुरी) पीठ—इसके प्रथम आचार्य पद्मपाद स्वामी हुए।

(ग) ज्योति-मठ (बद्रीनाथ)—इसके प्रथम आचार्य तोटक स्वामी हुए।

(घ) श्रृंगेरी-मठ (रामेश्वरम)—इसके प्रथम आचार्य हस्तामल स्वामी बनाये गए।

महात्मा प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के अनुसार शारदा-पीठ मठ की शृङ्खलाबद्ध आचार्य परम्परा मिलती है जो 'कल्याण' के वेदान्ताङ्क के पृष्ठ ३-५ में प्रकाशित हुई है। इसमें प्रथम आचार्य का नाम ब्रह्मस्वरूप आचार्य लिखा है जो सुरेश्वर आचार्य का दूसरा नाम है। उनका काल युधिष्ठिर-संवत् २६४९ से २६९१ अर्थात् ४२ वर्ष बताया गया है। प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी लिखते हैं इसकी पुष्टि दो अन्य ताम्र पत्रों से होती है।

(क) गुजरात के सुधन्वा नाम के किसी राजा ने स्वयं शंकराचार्य को युधिष्ठिर संवत् २६६३ आश्विन शुक्ल १५ में कुछ भूमिदान दी।

(ख) एक और ताम्रपत्र में शारदा-पीठ के प्रथम आचार्य श्री सुरेश्वराचार्य के कार्य-काल का उल्लेख बताता है वह युधिष्ठिर-संवत् २६४९ का है।

श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी लिखते हैं कि बड़ौदा राज्य के पुस्तकालय में एक प्राचीन कागज मिला जिस में श्रीशंकराचार्य का जन्म युधिष्ठिर-संवत् २६६१ से भी पूर्व बताया गया है। उनकी जन्म-तिथि तो वैसाख शुक्ल पंचमी सभी को ज्ञात है।

द्वारिका-पीठ के ७७ वें मठाधीश-पति श्री शंकराचार्य स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ महाराज का देहावसान ७ अप्रैल १९८२ ई० को हुआ, उनका काल २० जून १९४५ ई० से प्रारम्भ हुआ था, अर्थात् ३७ वर्ष गद्दी पर बैठे। इससे भी यदि काल-गणना की जावें तो आदि-शंकराचार्य का समय ५०० ईसा० पूर्व से पहिले निश्चित होता है।

श्री बद्री-आश्रम की मूर्ति के बारे में श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी लिखते हैं कि बौद्ध-धर्म के प्रसार पर इसको बौद्ध लोग बुद्ध भगवान् की मूर्ति समझकर कर पूजते रहे। फिर जब उस धर्म का लोप हुआ और आदि-शंकराचार्य से परास्त होकर वह भागे तब उन्होंने इस मूर्ति को नारद-कुण्ड में डाल दिया जो कि पास बहती हुई अलकनन्दा है। शंकर ने उसको निकाला और पुनः स्थापित किया, उसका एक अंश आज भी टूटा हुआ है। बद्रीनाथ आज भी हिन्दू, जैन, बौद्ध सभी का तीर्थ है। श्री शंकराचार्य दक्षिण में केरल के नम्बूद्रिपाद ब्राह्मण थे। इस उत्तरी-पीठ में वहीं के आचार्य होने की प्रथा आज भी है। शंकराचार्य ३२-३३ वर्ष की अल्प आयु में इस असार संसार को त्याग कर अपने निज स्वरूप में मिल गये। इनको कई छोटे-२ पहाड़ी राजाओं ने बद्री-क्षेत्र के लिये भूमिदान दी। श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के अनुसार आज भी उनके चार पत्र पीडुकेश्वर मन्दिर में रखे हैं। इन ताम्र पत्रों की लिपि तो पाली जैसी है पर भाषा संस्कृत है। वैदिक-धर्म को मानने वाले राजा संस्कृत में ही दान-पत्र-लिखते

थे छोटे-छोटे ठाकुर ही राजा कहलाते थे और यह सब राज्य इसी क्षेत्र में श्रीनगर से ऊपर थे।

नाम राजा	नाम राज्य	संवत् वर्द्धमान विजयराज
(i) पद्भट देव कुशाली	टेकापुर	२५
(ii) ललित सूरदेव	कीर्तिय करापुर	२२
(iii) ,,	,,	२१
(iv) सुभिक्ष राज	सुभिक्षपुर	

श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी लिखते हैं कि यह संवत् कोई जैन संवत् मालूम होता है। भगवान् महावीर प्रवर्द्धमान कहलाते थे। उनका संवत् महानिर्वाण कहलाता था। संभव है यह वही हो जिसे विक्रम-संवत् के प्रारम्भ होने से पहिले, सभी प्रयोग में लाते हों, नहीं तो विक्रम-संवत् का प्रयोग होता।

इन सब प्रमाणों के आधार पर श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के अनुसार, श्रीआदिशंकराचार्य का जन्म विक्रम-संवत् के प्रारम्भ से पहिले हुआ।

अन्त में श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी लिखते हैं कि यदि मान लिया जाये कि इन मठों की स्थापना शंकर ने ३० वर्ष की आयु में की, तो उनकी जन्म तिथि युधिष्ठिर संवत् २६१९ में पड़ती है अर्थात् ५२० ईसा-पूर्व परन्तु कितनी विडम्बना है कि अंग्रेज लोग व उनसे प्रभावित लोग ७००-८०० ई० बताते, जो बौद्ध-काल नहीं मुसलिम-काल का सूचक है।

इन संवतों के यहाँ लिखने का अभिप्राय यह है कि युधिष्ठिर-संवत् का प्रयोग बहुत काल तक होता रहा। अन्य संवत् भी भारत में जन्में, तात्पर्य यह कि भारतीयों को काल-गणना आती थी।

आज भी पंचांगों में युधिष्ठिर संवत् दिया होता है।

तीसरा संवत् जो प्रारम्भ से आज तक प्रचलित है और जिसके कारण अंग्रेज उसको बिगाड़ न सके वह है विक्रम-संवत्। आज उसको चलते हुए २०४४ वर्ष हो गये। ईसा-संवत् से वह ५७ वर्ष पुराना है पर

ईसा-संवत् का प्रचलन तो युरोप में ही ८७९ ई० के बाद से हुआ अर्थात् एक हजार वर्ष से है। उज्जैन के राजा गन्धर्वसेन के पुत्र विक्रमादित्य द्वारा शकों को पूर्ण रूप से परास्त करने पर विक्रम-संवत् प्रारम्भ हुआ। गुप्त-वंश के हिरास पर राज्य शक्ति का केन्द्र मालवा गणराज्य बना और उस वंश में विक्रमादित्य (शकारि) का आठवां स्थान है। वह पवार वंश का था, उसने भी पूरे भारत पर राज्य किया। पर अंग्रेजों ने उसके बारे में भी भ्रम पैदा किया कि वह गुप्त-वंश का चन्द्रगुप्त द्वितीय था। और उज्जैनी उसकी द्वितीय राजधानी थी। स्वार्गीय पद्मश्री डा० विष्णु श्रीधर वाकणकर ने उज्जैन की खुदाई कर सम्राट् विक्रम के काल का निर्धारण सप्रमाण 'कुल-संवत्' का सिक्का प्राप्त करके किया।

चौथा संवत् जो प्रारम्भ से आज तक प्रचलित है वह शालिवाहन द्वारा शक-संवत् के नाम पर चलाया गया। यह शालिवाहन भी मालव-गण राज्य का पवार वंश में ११ वाँ राजा हुआ है। यह विक्रम संवत् के १३५ वर्ष पश्चात् प्रारम्भ होता है। शालिवाहन ने शकगण आदि को हिन्दू धम में लेकर पूणतः इस समस्या का ही उन्मूलन कर दिया, अतः उसी की स्मृति में यह संवत् चलाया गया।

यह संवत् यद्यपि ईसा-संवत् के बाद प्रारम्भ हुआ पर इसका भी प्रचलन काल ईसा-संवत् से अधिक है।

भारतीयों की काल-चेतना—

भारत में यह सब संवत् जो अखिल भारतीय रूप में प्रचलित थे व हैं, उनकी काल-गणना चन्द्रमास से होती है। और महीनों के नाम भी नक्षत्रों की स्थिति पर रखे गये हैं। उस चन्द्रमास वाले वर्ष को सूर्य-वर्ष से मिलाने के लिये अधिक-मास आदि का प्रबन्ध किया गया है। अतः सभी महापुरुषों की जन्म-तिथियां तथा विशेष घटनाओं की तिथियाँ बहुत प्राचीन काल से पूरे देश में प्रचलित, हैं। जैसे—रामनवमी, कृष्णअष्टमी, भीष्म-अष्ठमी, गीता-जयन्ती, बुद्ध-पूर्णिमा, महावीर-जयन्ती, गुरु नानक-जयन्ती आदि आदि। इन सब जन्म दिवसों की तिथियां पक्ष तथा मास मालूम है पर संवत् नहीं।

सम्वत् के स्पष्ट न पता होने का कारण सम्भवतः यह है कि महापुरुषों से प्रेरणा प्राप्त करने हेतु उनकी जयन्ती आदि आयोजित करने हेतु तिथि की ही आवश्यकता पड़ती है। महापुरुष चिरंजीवी हैं अतः उनके जन्म अथवा मृत्यु के वर्ष का पता होना महत्वपूर्ण नहीं है।

भारत में जहाँ बहुत से पर्व मनाये जाते हैं वहाँ दो पर्व--वर्ष प्रतिपदा व मकर संक्रान्ति पर भी थोड़ा विचार कर लें।

वर्ष-प्रतिपदा अर्थात् नव-वर्ष दिवस चैत्रमास की शुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि को मनाया जाता है। उसी दिन सब अखिल भारतीय संवत् बदलते हैं। उत्तर भारत में यह चैत्र मास का १६ वाँ दिन होता है, भला वर्ष का पहिला दिवस प्रथम मास चैत्र का प्रथम दिवस होना चाहिये १६ वाँ क्यों? कारण यह है कि दक्षिण भारत में चैत्र मास शुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि से प्रारम्भ होता है। देश एक है राष्ट्र एक है, यह उप-महाद्वीप नहीं है, अतः वर्ष-प्रतिपदा एक ही होगी।

मकर-संक्रान्ति—यह पर्व सूर्य-वर्ष के अनुसार मनाया जाता है। उस दिन से दिन बड़ा होना प्रारम्भ होता है। अतः यह 'बड़े-दिन का त्यौहार' है। उस दिन सूर्य उत्तरायण में आता है। अंग्रेजी पंचांग के अनुसार २२ दिसम्बर को सूर्य मकर रेखा पर किसी समय पहुँचना चाहिये। २३ व २४ तारीख दिन का समय एक ही-सा रहता है। २५ दिसम्बर से दिन बड़ा होना प्रारम्भ होता है। अतः २५ दिसम्बर बड़े-दिन का त्यौहार कहलाता है इसको पादरियों ने ईसामसीह का जन्म-दिवस मान लिया। पर युरोप में जब विज्ञान की उन्नति से धर्मान्धता कम हुई, तब कुछ लोग निकले जिन्होंने बाइबल द्वारा फैलाये अन्धकार के विरुद्ध लिखा व सोचा। युरोप व इंगलैंड के प्राचीन इतिहास पर कई पुस्तकें १६३० के आस-पास छपीं। उसमें केल्टिक ड्रूड (Druids) लोगों का वर्णन है। वह ज्ञानी-सदाचारी व सदगुण व्यक्ति थे। संभवतः द्र= दृष्टाविद=विद्वान। द्रविद या द्रविड़ या द्रविड़ का अर्थ ऋषि-मुनि था। इन पुस्तकों में—

(१) 'ड्रूड का पूर्ण इतिहास' Complete History of Druids, लेखक लिचफील्ड, प्रकाशक लांगमैन, लन्दन।

(२) Matter, Myth & Spirit or Keltic Hindu Links लेखक डोरोथी चैपलीन, प्रकाशक स्काटरिडर एण्ड को लन्दन (१९३५)

(३) The Celtic Druids, लेखक हिगिन्स, प्रकाशक रोलैंड व हन्टर पिकाडिली (१९२९)।

इन सभी पुस्तकों में द्रूड (Druids) को पूरब से आया हुआ बताया गया है। यह कुल युरोप इंगलैंग, आयरलैंड, फ्रांस, इटली आदि में छाए हुए थे। यह आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म, बालकों की १४ वर्ष घर से दूर रहकर शिक्षा पाने (गुरु-प्रणाली), मंत्र लिखे नहीं जाते कण्ठस्त किये जाते हैं आदि में विश्वास करते थे। यह २५ दिसम्बर को पहाड़ों पर आग जलाकर (होम करके) एक त्यौहार मनाते थे। हिगिन्स लिखता है कि ब्रिटेन के ऑक्सफोर्ड नगर में एक बालक को दूध पिलाने वाली माँ की प्रतिमा थी। यह लोग सूर्य को मित्र कहते थे। भाव था छोटे बालक सूर्य को दूध पिला कर बड़ा कर रही है। इस २५ ता० दिसम्बर का त्यौहार का हर पुस्तक में वर्णन है।

हिगिन्स ईसाईयों के छल कपट पर व्यंग करते हुए लिखता है कि इस मूर्ति पर उसका नाम मूर्तियां न लिखा होता तब ईसाई इसे मेरी सिद्ध कर देते।

इस ग्रंथ के पृष्ठ १६४ पर ईसाई पादरियों के इस षडयंत्र का भण्डाफोड़ करते हुए हिगिन्स लिखता है 'कि ईसाई पंथ के साधु ईसाई बनने के बाद पतित और पापी रोमन व ग्रीक ईसाई साधु बन गये। धर्म परिवर्तन के बाद उनकी एक खिचड़ी सभ्यता बन गई। उनकी Monastries उनके पहले से चले आये आश्रम थे। और २५ दिसम्बर को ईसा के जन्म का त्यौहार मानने लगे, जो द्रूड मनाते थे।

यह बड़े-दिन का त्यौहार हमारा है, इसी दिन भीष्म ने प्राण त्यागे थे। पर भारत में यह मकर-संक्रान्ति का त्यौहार खिसकते-खिसकते १५ जनवरी तक आ गया। स्वामी विवेकानन्द का जन्म दिवस मकर-संक्रान्ति का दिन है। १८६३ ई० में वह १२ जनवरी को पड़ा था। अपनी

'भारतीय इतिहास संकलन योजना' के आधीन' एक पुस्तक 'भारतीय काल-गणना की रूपरेखा' प्रकाशित हुई है। उसमें सूर्य-वर्ष के निकालने की दो विधियाँ भारतीय परम्परा के अनुसार दी है और लिखा है कि यदि दूसरी विधि से गणना की जाती तो यह गलती नहीं होती।

भारत सरकार ने स्वतंत्रता के बाद सूर्य-वर्ष के आधार पर एक कलैंडर चलाने का प्रयत्न किया, पर उन्होंने उसके लिए शक-संवत् लिया और मासों के नाम भी नहीं बदले। वह चल न सका। शक-संवत् इस समय भी देश में प्रचलित है, फिर वह ईसा-संवत् से छोटा है। वह भारत की गरिमा व प्राचीनता का द्योतक नहीं, फिर मास जो चल रहे हैं, उनकी तिथियों के अनुसार सब पर्व मनाये जाते हैं, उनकी दूसरी तिथियां नहीं हो सकती। यदि शक-संवत् के स्थान पर युधिष्ठिर-संवत् ले लिया जाता और महीनों के नाम भी मित्र रख दिए जाते, तो नवीन सूर्य-वर्ष का पंचांग चल सकता था, पर हमारी सरकार में बैठे लोगों को अपने राष्ट्र की प्राचीनता का गर्व कहाँ है कि वह युधिष्ठिर संवत् को मान्यता प्रदान करते।

अध्याय–२

(पुराणों का ऐतिहासिक महत्व)

भारत में इतिहास लिखने की बड़ी प्राचीन परम्परा रही है। पुराण का अर्थ ही इतिहास है। परन्तु इसकी शैली आज की इतिहास लिखने की शैली से भिन्न है। यद्यपि बहुत से ऐतिहासिक-तत्व बाल्मीकि रामायण व महाभारत से मिल सकते हैं। परन्तु जिस काल का इस पुस्तक में वर्णन किया जा रहा है वह महाभारत-युद्ध के बाद का है, अतः उसके लिए रामायण व महाभारत उपयोगी नहीं है। वह काल से पूर्व की घटनाओं का विवेचन करती हैं।

पुराणों में महाभारत से पहले सृष्टि रचना से लेकर महाभारत काल तक, तथा महाभारत काल के बाद भी इतिहास मिलता है। पुराण बताते हैं कि उनके लिखे जाने का पाँच उद्देश्य हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलणम् ॥

सृष्टि-रचना, प्राणी की उत्पत्ति, विभिन्न मनुओं का काल, वंशावलियां, तथा उनकी जीवन की दिशा का वर्णन—यह पांच बातों के बताने के लिए पुराण लिखे गये हैं। सृष्टि की उत्पत्ति भारतीय मनीषियों के अनुसार १ अरब ९७ करोड़ से अधिक वर्ष पूर्व हुए जब सूर्य, पृथ्वी आदि ग्रह, वनस्पति, पशु एवं मनुष्य का जन्म हुआ।

शैली—पुराण करोड़ों वर्ष के इतिहास की ओर संकेत करते हैं। अतः उनकी शैली आज के इतिहास लेखकों से भिन्न है। वह केवल इतिहासज्ञों के लिए नहीं अपितु जनसाधारण तक पहुँचने के लिए लिखे गये। अतः कथाओं द्वारा जनसाधारण के चित्त व चरित्र-निर्माण के लिए उनकी रचना हुई। उनमें वंशावलियों को शुष्क बना कर संवत् रटाना

उद्देश्य न था। वह इतिहास के द्वारा सनातन नीति-तत्वों की शिक्षा देने के लिए कटिबद्ध थे। इसी लिए जहाँ इतिहास के सम्बन्ध में उनकी यह भावना थी कि ऐतिहासिक घटना-चक्र के किसी अंश में भी किसी प्रकार का परिवर्तन न होना चाहिए, वहाँ वह यह भी कहते थे—

धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेश मन्वितम् ।
पूर्ववृत्तकथायुक्तं इतिहास प्रवक्षते ।।

अर्थात् इतिहास वही होता है जिसमें भूतकाल का वृत्त हो, कथाए हो, परन्तु हो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपदेश के साथ।

पुराणों के लेखक—व्यास कहलाये। भारत में व्यासों की परम्परा चली। महाभारत द्वैपायन व्यास ने सम्पादित की और उस समय तक सब कथाएँ वंशावालियों की जानकारी आदि महाभारत में दे दी। पुराण उसके बाद व्यासों द्वारा ही लिखे गये, यह भी ज्ञानी, विद्वान, सन्तों द्वारा लिखे गये जो किसी राजा के वेतन-भोगी न थे। वह सब ब्यास नाम से प्रसिद्ध हुए, उनको अपने नाम का यश भी नहीं लेना था। अतः अपना नाम भी नहीं छोड़ गये। पुराण साहित्य की महत्ता ही इसमें है कि निस्वार्थ-भाव से, निष्काम व्रतधारी लेखकों द्वारा लिखे गये।

वेद तथा उनकी रक्षा—वेद में किसी प्रकार का परिवर्तन न आस के इसके लिये विशेष प्रयत्न किया गया। उसका हर अक्षर, मात्रा यहाँ तक उच्चारण भी हजारों वर्ष से सुरक्षित चला आ रहा है। यह सब युरोपियन विद्वानों को आश्चर्य में डालता है। फिर ऐसा पुराणों के लिये क्यों नहीं किया गया यह प्रश्न कुछ विद्वान उठाते हैं। वेद ऋषियों द्वारा कण्ठस्त किये जाते थे, यह भी एक परम्परा थी।

पर पुराण—इतिहास बताते हैं, वह समय के साथ बढ़ता जाता है, उस में, परिवर्तन होना आवश्यक है। पुराणों में संकेत मिलता है कि आज के पुराणों से पहिले, जलप्लावन से पहिले, भी प्राचीन पुराण थ, वह इस युग में लोप हो गये। इस पर भी ब्राह्मण ग्रन्थों में तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों, जो वर्तमान पुराणों से पहले लिखे गये थे उनसे यह संकेत

मिलता है कि वर्तमान पुराणों में उन पुराने पुराणों से बहुत कुछ लिया गया है। और फिर उसको आगे बढ़ाया गया है।

पुराणों की रक्षा का ध्यान—पुराण परिवर्तन-शील है, उनमें आगे की घटनायें लिखी जानी हैं, वंशावलियाँ को बढ़ना है यह सवध्यान में रख-कर उनकी रक्षा व शुद्ध रखने काम का भी प्रयत्न किया गया। हमारे ऋषि-मुनि पुराण लिख कर ही सन्तुष्ट नहीं हुए। वह इतिहास को देश के हर वासी के पास चाहे वह पढ़ा हो अथवा अनपढ़ पहुँचाना चाहते थे क्योंकि उनका इतिहास लिखने का उद्देश्य ही समाज व व्यक्ति-निर्माण था। अतः उसको लोगों को कण्ठस्थ कराया गया। श्री सत्यकेतु विद्यालंकार अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग' के पृष्ठ २९ पर लिखते है 'परम्परा के अनुसार यह कहा जाता है कि अष्ठादश पुराणों का पाठ सूत लोमहर्षण और उसके पुत्र सौति उग्रश्रवस ने किया था। धर्म तथा अध्यात्म के क्षेत्र में जो स्थान ऋषियों का था वही स्थान 'वंशानुचरित' में सूतों का था।'

भारत एक विशाल देश है, अतः हजारों सूतों की आवश्यकता स्वाभाविक रूप से अनुभव की गई जो वर्ष में कितनी ही बार इस इतिहास व वंशावलियों को जन साधारण तक सुनाते रहे। अतः सूतों का प्रशिक्षण तथा उनमें परम्परा विभिन्न भारतीय भाषाओं में जन्मी और वंशावलियां सुरक्षित रखी गईं।

इन पुराणों में नवीन घटनायें व नवीन वंशावलियां जोड़ने के लिए, तथा उनकी प्रामाणिकता सदा शुद्ध व सत्य रहे, एक और परम्परा बनाई गई। समय-समय पर जैसे कुम्भ के मेलों, प्रत्येक १२ वर्ष बाद पड़ते हैं, देश भर के विद्वान इतिहास तथा पुराण रचेता मिलते थे और वाद-विवाद, जानकारी का आदान-प्रदान कर पुराणों का पुनः अवलोकन करते थे और उसमें लिखने या उतारने में जो अशुद्धियां आ जाती थीं वह ठीक की जाती थीं तथा नवीन तत्व जोड़े जाते थे। कहा जाता है कि नैमीसारण्य में ऐसी विचार गोष्ठी बारह साल तक चली। पर यह विचार गोष्ठियां विदेशी आक्रमणों व विशेषकर मुसलिम काल में न हो सकी, अतः यह काम बन्द हो गया।

पुराणों की संख्या—पुराण अठारह हैं और लगभग इतने ही उप-पुराण हैं। विष्णु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, वायु पुराण, भागवत पुराण, मत्स्य पुराण और गरुड़ पुराण इनमें यह वंशावलियां दी हुई हैं। पर भविष्य पुराण में यह अधिक विस्तार से दी हैं।

'कलियुग वृत्तान्त' जो भविष्य पुराण का अंग है, उसमें उस समय तक सभी पुराणों पर पुनः विचार करके, तथा उनके सम्पादन व उतारने में आई त्रुटियां को दूर करने हेतु विचार कर सर्वसम्मत रूप से इस 'कलियुग वृत्तान्त' का सम्पादन किया। पुराने पुराण आन्ध्र वंश पर समाप्त हो जाते हैं। इसमें भारत के इतिहास का शृङ्खलाबद्ध वर्णन आठवीं शताब्दी ईसा तक मिलता है। इससे यह प्रकट होता है कि पुराणों का पुनः सम्पादन का कार्य उस समय तक चला।

पुराणों में दी गई वंशावलियां—पुराणों में दी हुई वंशावलियों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं (१) महाभारत युद्ध से पहले की तथा (२) महाभारत युद्ध के बाद की।

महाभारत युद्ध से पहले की वंशावलियां—

जो पुराणों या महाभारत या वाल्मीकि रामायण में दी हैं वह वंशावलियां नहीं, नामावलियां हैं। वह मनुष्य के पृथ्वी पर जन्म से लेकर प्रारम्भ होती हैं और करोड़ों वर्ष के काल को संकेत मात्र में बताती हैं। पुराणकार स्वयं कहता है—

न शक्यो विस्तरस्तस्य वक्तुं वर्षशतैरपि।

अर्थात्—विस्तार पूर्वक वर्णन करना १०० वर्षों में भी सम्भव नहीं है।

संजय ने महाराज धृतराष्ट्र को उनको उनके वंश के नष्ट हो जाने पर जो सान्त्वना दी, वह महाभारत के आदि पर्व १-२३९, २४० में इन शब्दों में है, कि पुरु वंश के लाखों-करोड़ों अन्य राजा-महाराजा हो चुके हैं जो मर चुके हैं जैसे आपके पुत्र मर गये हैं।

पुराणों तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों में महाभारत युद्ध से पहिले की वंशावलियां एवं नामावलियाँ हैं। यह सूर्यवंश व चन्द्रवंश जो मनु के पुत्र इक्ष्वाकु व पुत्री इला से चले हैं की पीढ़ियां मिलाने से ही मालूम हो जाता है युधिष्ठिर चन्द्र वंश की ५० वीं पीढ़ी पर हैं, पर समकालीन सूर्यवंशीय राजा वृहद्बल ९२ वीं पीढ़ी पर है। ऐसे ही वाल्मीकि रामायण में रघु की १२ वीं पीढ़ी पर 'अज' आते हैं, पर रघुवंश में दिलीप के रघु और रघु के 'अज' दिये हैं। अतः वहां पुत्र का अर्थ वंश में आगे आने वाली सन्तान से है।

अतः यह बात निर्विवाद रूप से सत्य कही जा सकती है कि पुराणों व पुराने संस्कृत साहित्य में महाभारत से पहिले की वंशावलियां वास्तव में नामावलियां हैं, और उनको गिनकर 'राम' का काल नहीं निकाला जा सकता।

महाभारत युद्ध के पश्चात् की पुराणिक वशावलियां—

यह वंशावलियां वास्तव में वंशावलियां हैं और उनका आधार इतिहास है जो छान-बीनकर, समय-समय पर पुनः अवलोकन कर समकालीन विद्वानों के मतों के अनुसार लिखा गया। इन राजाओं के बारे में पुराणों में ऐसी कथायें भी नहीं हैं जो काल्पनिक हो।

पुराणों में दिया हुआ काल—पुराणों में काल गणना, जिससे इस पुस्तक का सम्बन्ध है, महाभारत युद्ध से की गई है। महाभारत का युद्ध कलियुग लगने से ३६ वर्ष पूर्व हुआ। युधिष्ठिर ने महाभारत युद्ध के बाद ३६ वर्ष कुछ महीने राज्य किया। कृष्ण ३६ वर्ष पश्चात् संसार से विदा हो गये तथा परीक्षित ३७ वें वर्ष में सिंहासन पर बैठा। कलियुग भारतीय व पाश्चात्य ज्योतिष के अनुसार भी ३१०२ ईसा पूर्व में लगा। अतः पुराणों की काल गणना ३१३८ ईसा० पूर्व से चलती है।

पुराणों में राजाओं व राजवंशों का काल—पुराणों में महाभारत युद्ध के पश्चात् जैसे वंशावलियां बहुत छान-बीन, विचार-विमर्श व पुनः अवलोकन के बाद लिखी गई। इसी प्रकार राजाओं के नाम व राज्य काल बहुत छान-बीन व इतिहास के आधार पर ठीक ही दिया गया है। उस

काल में लोग निरोग्य, सदाचारी व ब्रह्मचर्य का व्रत पालन करने वाले दीर्घ आयु होते थे, अतः राज्यकाल भी अधिक हो सकता था, तो जैसा राज्यकाल उनका था वह ही दिया गया। पुराने पुराण आंध्र वंश पर समाप्त होते हैं अतः उनका राज्यकाल निम्नलिखित पुराण अनुसार है:—

मगध राज्य का राजा महाभारत में सहदेव पुत्र जरासंध था जो पाण्डवों की ओर से लड़ा व मारा गया। उसके पुत्र महाराज मार्जारि से लेते हैं—

वंश	संख्या	वर्ष में काल	औसत
१. वृहद्रथ वंश मार्जारि से रिपंजय तक	२२ राजा	१००६	वर्ष ४५
२. प्रद्योत वंश	५	१३८	वर्ष २७
३. शैशु नाग वंश	१०	३६०	,, ३६
४. नन्द वंश	९	१००	,, ११
५. मौर्य वंश	१२	३१६	,, २६
६. शुंग वंश	१०	३००	,, ३०
७. कण्व वंश	४	८५	,, २१
८. आंध्र वंश	३२	५०६	,, १६

अतः यह स्पष्ट है कि राजाओं के काल कोई बढ़ा-चढ़ाकर नहीं लिखे गये, वह वास्तविक लगते हैं।

पुराणों के बारे में विद्वानों की कुछ सम्मतियां—श्री राधवाचार्य अपनी पुस्तक 'भारतीय इतिहास का सिंहावलोकन' में पृष्ठ ३ पर याज्ञवल्क्य स्मृति व छान्दोग्य उपनिषद् के वाक्य देकर लिखते हैं कि 'विश्व की अष्टादश विद्याओं में एक विद्या के रूप में उन्होंने (विद्वानों) ने उसकी गणना की और समाज धारक धर्म के चतुर्दश सिंहासनों में एक पर उसको स्थापित किया। अपौरुषेय (वेद) ज्ञान के समकक्ष उसकी प्रतिष्ठा की। परम्परा-क्रम से उसका अध्ययन व अध्यापन चला, चलता रहा। युग-युग में उसका सङ्कलन और सम्पादन होता रहा।

परन्तु जब पाश्चात्य इतिहासकारों, जो इतिहासज्ञ होने की अपेक्षा ईसाई अधिक थे और सृष्टि की उत्पत्ति ही ६००० वर्ष मानते हैं, भ्रम फैलाया कि कलि संवत कुछ नहीं है, पुराणों की वंशावलियां व नाम व काल सभी काल्पनिक हैं, तब पुराणों का महत्व भारतीयों की दृष्टि में भी गिर गया और उनका पढ़ना-पढ़ाना बन्द हो गया। सन् १९२२ में एक अंग्रेज पार्जीटर ने दो ग्रन्थ पौराणिक इतिहास के सम्बन्ध में प्रकाशित किये। तब भारत के कुछ विद्वानों की दृष्टि प्राचीन इतिहास-ग्रन्थों की ओर आकृष्ट हुई। और श्री राधवाचार्य लिखते हैं कि 'डाक्टर सीताराम प्रधान, डा० हेमचन्द्र राय, डा० काशीप्रसाद जायसवाल, श्रीयुत सी० वी० वैद्य आदि इस ओर आगे बढ़े। उन्होंने उन बहुत-सी ऐतिहासिक घटनाओं की वास्तविकता का समर्थन किया, जिनको पाश्चात्य विद्वान कल्पित बता चुके थे तथापि उन घटनाओं के समय को निर्धारित करने में इनकी गति अत्यन्त मन्द रही। उदाहरणार्थ जिस महायुद्ध को स्मिथ ने अनैतिहासिक सिद्ध करने का दुस्साहस किया था उसको पार्जीटर ने ९५० ईसा० पूर्व बताया, प्रधान ने ११५० ईसा० पूर्व बताया और जायसवाल ने १४२४ ईसा० पूर्व बताया। वैद्य महोदय इसके समय को टटोलते हुए कलियुग के आरम्भ तक तो पहुँचे परन्तु ऐसा करने में वह पाश्चात्य इतिहासकारों द्वारा निर्णित तिथि-क्रम के जाल में फँसकर पुराण प्रकोक्त वंश-परम्परा को कल्पित समझ बैठे। यह कहा जा सकता है कि पाश्चात्य प्रभाव ने जिन संस्कारों का सृजन किया वे नष्ट नहीं हो सके हैं। इसीलिए अभी तक अपने इतिहास के प्रति भारतीय नव्य-विद्वानों की आस्था नहीं जम सकी हैं।'

पुराणों में अशुद्धियाँ :

पुराणों में कई कारणों से कहीं-कहीं अशुद्धियां मालूम होती हैं।

(१) पुरानी पुस्तकें हस्तलिखित होती थीं, अतः उनको उतारने में अशुद्धियां हो सकती थीं।

(२) कभी पुनः अवलोकन न होने के कारण भी अशुद्धि आ सकती थी। यह पुनः अवलोकन का कार्य लगभग एक हजार वर्ष से नहीं हो पाया।

(३) कभी-२ अशुद्धि किसी प्रयोजन से किसी दूसरे व्यक्ति के कहने पर उतारने वाले या छापने वाले ने कर दी।

प्रथम व द्वितीय प्रकार की अशुद्धियां विभिन्न पुराणों का तुलनात्मक अध्ययन से ठीक की जा सकती हैं जैसे नन्द वंश में ९ राजा हुये, क्योंकि सभी राजा नन्द कहलाये अतः भ्रम हो गया कि एक राजा था, और उसका राज्य काल १०० वर्ष होना असम्भव लगता है। इसी प्रकार की एक और अशुद्धि सामने आई। भागवत पुराण में कण्व वंश का राज्यकाल ३४५ वर्ष दिया है जबकि कुल राजा इस वंश में चार ही हुये। दूसरे सभी पुराणों में कण्व वंश का राज्यकाल ८५ वर्ष दिया है, यह अशुद्धि पुनः अवलोकन की कमी के कारण हुई। पर दूसरे पुराणों को देखकर ठीक की जा सकती हैं।

तीसरे प्रकार की अशुद्धियां जो जान-बूझकर कराई गई, उनकी खोज करना व ठीक करना भी आवश्यक है। श्री कोटा वेंकटाचलम जिन्होंने पुराणों का गहन अध्ययन किया है, ने अत्यन्त कड़े शब्दों में पाश्चात इतिहासकारों व लेखकों पर, विशेषकर अंग्रेज इतिहास पार्जीटर पर यह आरोप लगाया है कि उन्होंने अपना मत सत्य प्रगट करने को पुराणों में अशुद्धियां कराईं। वह उन भारतीयों पंडितों पर तो बहुत ही क्रुद्ध हैं जिन्होंने अंग्रेज आकाओं के कहने पर ऐसा किया। उनका आरोप प्रमाण सहित है कि पुराण के किस वाक्य या पद में क्या परिवर्तन किया गया है। उन्होंने सिद्ध किया है कि पं० सुधाकर द्विवेदी ने आर्यभट्ट के लिखित प्रसिद्ध ग्रन्थ "आर्यभट्टम" के पद में छापते समय श्री टी० एन० नारायण शास्त्री के विरोध करने पर भी परिवर्तन कर दिया।

अध्याय–३

(पुराणों के अनुसार क्रमबद्ध-इतिहास)

महाभारत के बाद पुराणों में हस्तिनापुर, कौशल व मगध राजवंशों का वर्णन किया गया है।

हस्तिनापुर का राजवंश :

महाभारत युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर को अपनी राजधानी बनाया। युधिष्ठिर के राज्यारोहण के समय अभिमन्यु पुत्र परीक्षित मां के गर्भ में था। युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष राज्य किया। कृष्ण का देहावास द्वापर के अन्त में हुआ और कलियुग प्रारम्भ हुआ। कृष्ण के देहावास का समाचार पा युधिष्ठिर परीक्षित को राज्य सौंप अपने भाइयों व द्रौपदी सहित वन में तपस्या को चले गये। परीक्षितका राज्यारोहण कलि संवत् १ युधिष्ठिर संवत् ३७ से हुआ। उसने २४ वर्ष राज्य किया परीक्षित के अनन्तर वंशज परम्परा में (१) जनमेजय (२) शतानीक (३) सहस्त्रानीक (४) अश्वमेघदत्त (५) अधिसीम कृष्ण (६) निचक्ष (७) उष्ण (८) चित्ररथ (९) शुचिद्रथ (१०) वृष्णिवान (११) सुषेण (१२) सुनीथ (१३) रुच (१४) नृचक्षु (१५) सुखिबल (१६) परिप्लव (१७) सुनय (१८) मेधावी (१९) नृपंजय (२०) दुर्व (२१) तिग्मात्मा (२२) बृहद्रथ (२३) वसुदान (२४) शतानीक (२५) उदयन (२६) वहनीर (२७) दण्डपाणि (२८) निरमित्र (२९) क्षेमक पुराणों के अनुसार महाराज क्षेमक तक कलियुग के १४३२ वर्ष बीते थे, अर्थात् ३१०२–१४३२=१६७० ईसा० पूर्व में यह वंशसमाप्त हो गया, फिर अन्य वंशों का हस्तिनापुर या दिल्ली पर राज्य हुआ।

अयोध्या का कौशल वंश :

महाराज कुश के वंशज महाराज बृहद्बल महाभारत युद्ध में अभि-

मन्यु के हाथ मारे गये । उनके अनन्तर वंश परम्परा में (१) वृहत्क्षत्र (२) उरुक्षय (३) वत्सव्यूह (४) प्रतिव्योम (५) दिवाकर (६) सहदेव (७) बृहदश्व (८) भानुरथ (९) प्रतीताश्व (१० सुप्रतीक (११) मरुदेव (१२) सुनक्षत्र (१३) किन्नराश्व (१४) अन्तरिक्ष (१५) सुषेण (१६) अमित्रजित (१७) बृहद्भ्राज (१८) धर्मी (१९) कृतंजय (२०) रणंजय (२१) संजय (२२) प्रसेनजित् (२३) क्षुद्रक (२४) कुलक (२५) सुरथ (२६) सुमित्र, और अयोध्या का कौशल-वंश समाप्त हो गया, यद्यपि इक्ष्वाकु वंश की अनेक शाखायें अन्य स्थानों पर चलती रहीं ।

मगध-राज्य अथवा गिरिव्रज वंशों की राजावली :

मगध का राज्य जिसकी राजधानी गिरिव्रज रही (जो आज राजगृह कहलाती है) को महाराज बृहद्रथ ने महाभारत युद्ध से १६१ वर्ष पहले स्थापित किया था । यह चन्द्रवंशीय महाराज कुरु की परम्परा में थे । वृहद्रथ से दसवीं पीढ़ी पर महाराज जरासंध हुए, उनका राज्य पुराणों के अनुसार बंगाल व असम तक पूर्व में फैला हुआ था । चेदि (उड़ीसा) का राजा शिशुपाल जरासन्ध के आधीन था और उनके साम्राज्य का प्रधान सेनापति (श्री सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार) मथुरा का राजा कंस जरासन्ध का दामाद था । युधिष्ठिर जब इन्द्रप्रस्थ के राजा थे, तब उनकी इच्छा राजसूय-यज्ञ करने की हुई । कृष्ण, जो स्वयं कंस-वध के पश्चात् जरासंध के आक्रमणों के कारण मथुरा छोड़, द्वारिका जा बसे थे, ने परामर्श दिया कि जरासंध के रहते यह राजसूय-यज्ञ सफल न होगा । अर्जुन व भीम वेश बदलकर कृष्ण के साथ मगध की राजधानी गिरिव्रज गये और वहाँ जरासन्ध को द्वन्दु-युद्ध के लिए ललकारा ।

जरासन्ध जैसा उद्भट वीर द्वन्दु-युद्ध से इन्कार नहीं कर सका । भीम से १४ दिन के द्वन्दु-युद्ध के बाद वह खुले-मैदान में मारा गया । कृष्ण भली-भाँति जानते थे कि जरासन्ध को सैन्य-बल से जीतना सम्भव नहीं था उसने उस काल के १०१ राजाओं में से ८७ कैद कर रखे थे । आर्य-परम्परा राजाओं को कैद करने या मारने की नहीं थी केवल उनको आधीन रखने की थी ।

जरासन्ध के पश्चात् उसका पुत्र सहदेव सिंहासन पर बैठा और वह पाण्डवों की ओर से महाभारत युद्ध में लड़ा व मारा गया।

(१) मगध (गिरिव्रज) के बृहद्रथ वंश :—

इस वंश में महाभारत युद्ध के पश्चात् (१) मार्जारि (२) श्रुतश्रवा (३) अयुताय (४) निरमित्र (५) सुक्षत्र (६) बृहत्कर्मा (७) सेनाजित (८) श्रुतंजय (९) विभुशुचि (१०) क्षेम (११)सुव्रत (१२) धर्मनेत्र (१३) निवृंति (१४) त्रिनेत्र (१५) सुव्रत (१६) दृढ़सेन (१७) सुमति (१८) सुचल (१९) सुनेत्र (२०) सत्यजित (२१) वीरजित (२२) रिपुंजय—इस प्रकार मार्जारि से रिपुंजय तक इस वंश में २२ राजा हुये और कुल काल १००६ वर्ष का है। जरासन्ध के बाद यह वंश युधिष्ठिर के वंश के आधीन हो गया, पर पुनः महाभारत युद्ध के बाद इसका प्रताप बढ़ता गया। यह गणना महाभारत युद्ध या युधिष्ठिर संवत् से दी है जो (३१०२+३६) ३१३८ ईसा० पूर्व है।

अतः इस वंश का राज्यकाल ३१३८—१००६=२१३२ ईसा० पूर्व तक रहा। रिपुंजय को शुनक ने मार डाला और प्रद्योत को राजा बनाया।

(२) मगध (गिरिव्रज) का प्रद्योत वंश :—

इस वंश में प्रद्योत, पालक, विशाखयूप, राजक और नन्दिवर्धन कुल पाँच राजा हुये, जिनका राज्यकाल कुल मिलाकर १३८ वर्ष था।

अतः यह वंश (२१३२—१३८)=१९९४ ई० पूर्व तक रहा।

(३) मगध (गिरिव्रज) का शैशुनाग वंश :—

इस वंश में शिशुनाग, काकवर्ण, क्षेमधर्मा, क्षत्रौजा, बिम्बिसार, अजातशत्रु, दशक, उदमी, नन्दिवर्धन और महानन्दी हुये। इस वंश में कुल मिलाकर दस राजा व इसका राज्यकाल ३६० वर्ष है।

अतः (१९९४—३६०)=१६३४ ई० पूर्व तक इस स्थान पर गौतम बुद्ध के समय की चर्चा करलें। यह सभी को मान्य है कि वह शिशुनाग-वंशीय महाराज बिम्बिसार के समय में धर्म प्रचार कर रहे थे, और उन्होंने ८० वर्ष की आयु पाई।

पुराणों के अनुसार शिशुनाग ने ४० वर्ष, काकवर्ण ने ३६ वर्ष, क्षेम धर्मा ने ३६ वर्ष, क्षत्रौजा ने ४० वर्ष, और बिम्बसार ने २८ वर्ष राज्य किया। यह सब १७० वर्ष का समय होता है।

अर्थात् गौतम बुद्ध का समय=(१६५४—१७०)

जब वह प्रचार कर रहे थे = १८२४ ई० पूर्व

यदि मान लिया जावे कि वह ३५ वर्ष की आयु में प्रचार कर रहे थे तो निर्वाण काल—१८२४—४५=१७७६ ई० पूर्व है।

शैशुनाग वंश के अन्तिम राजा महानन्दी की शूद्रा स्त्री से महापद्मनन्द का जन्म हुआ, और महानन्दी के पश्चात् वही सिंहासन पर बैठे, वह नन्द वंश कहलाया।

(४) मगध (गिरिव्रज) का नन्द वंश :—

पुराणों के अनुसार महापद्मनन्द के ८ पुत्र हुये (पुराणों में पुत्र का अर्थ पौत्र आदि से भी है) और सब मिलाकर नव नन्द कहलाये। उनका राज्यकाल १०० वर्ष है।

चाणक्य की सहायता से नन्द वंश के अन्तिम राजा को मारकर चन्द्रगुप्त ने मौर्य वंश चलाया, उस नन्द का नाम सुमल नन्द या धनानन्द आता है।

अतः इस वंश कुल के ९ राजा हुये और कुल राज्यकाल १०० वर्ष रहा।

अतः (१६३४—१००)=१५३४ ई० पूर्व तक यह वंश रहा।

(५) मगध (गिरिव्रज) का मौर्य वंश :—

पुराणों के अनुसार नन्दवंश का मूल-उच्छेदन करके चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को राजा बनाया। यह मत सभी को मान्य है। यह गिरिव्रज में ही शासन करता था और राज्य मगध राज्य कहलाता था। चाणक्य ने

राक्षस जो नन्दवंश का मंत्री था समझा-बुझाकर चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाया, इसके समय में ही चाणक्य ने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्थ शास्त्र' लिखा। इसी मौर्य काल में अन्य ग्रन्थ 'कथावस्तु', पाणिनि पर टीका 'व्याकरण महाभाष्य', 'वरुचि की कवितायें', 'ययाति की कहानियां', 'वासवदत्ता नाट्यधारा' आदि ग्रन्थ लिखे गये। परन्तु पुराणों, अर्थ शास्त्र या किसी भी ग्रन्थ में सिकन्दर, सैलूकस, मेगस्तनीस, पोरस आदि का कहीं वर्णन नहीं आया है।

इस वंश में १२ राजा हुये। (१) चन्द्रगुप्त (२) विंद्रुसार (३) अशोकवर्धन (४) सुपार्श्व (५) बन्धुपालित (६) इन्द्रपालित (७) हर्षवर्धन (८) सम्प्रति (९) शालिशूक (१०) देववर्मा (११) शतधनु (१२) बृहद्रथ। और इस वंश का राज्य-काल ३१६ वर्ष है।

अतः १५३४—३१६=१२१८ ईसा पूर्व तक यह वंश रहा।

इस वंश के तीसरे राजा अशोकवर्धन को बहुत से इतिहासकार सम्राट अशोक मानने हैं और प्रियदर्शी (अर्थात् बौद्ध होना) उन्हीं के साथ जोड़ा जाता है। यह भी कम विचारणीय नहीं है, इसको सिंहल द्वीप (लंका) की वंशावलियों के सहारे किया गया है, इस विषय पर अलग अध्याय में विचार करेंगे।

युग पुराण से ज्ञात होता है कि मौर्यवंशीय शालिशूक के समय में यवन राजा धर्ममीत ने उस पर आक्रमण किया था, परन्तु उसे पराजित होकर वापिस लौटना पड़ा था।

पुराणों के अनुसार मौर्य वंश के अन्तिम राजा बृहद्रथ को मारकर सेनापति पुष्यमित्र ने शुङ्गवंश का राज्य स्थापित किया।

मौर्य वंश के राजा अपने नाम के साथ 'मौर्य' नहीं लगाते थे।

(६) मगध (गिरिव्रज) का शुङ्ग वंश :—

शुङ्गवंश में क्रमशः दस राजा हुये (१) पुष्यमित्र (२) पुष्यमित्रसुत (३) सुज्येष्ठ (४) वसुमित्र (५) भद्र (६) पुलिन्दक (७) घोष (८) वज्रमित्र

(९) भागवत (१०) देवभूमि। और इस वंश का राज्य-काल ३०० वर्ष था।

अतः १२१८—३००=९१८ ईसा पूर्व तक।

शुङ्गवंशीय चौथे राजा वसुमित्र के काल में यवनों ने पुनः आक्रमण किया, परन्तु सिन्धु तीर पर यवनों को परास्त किया गया।

(७) मगध (गिरिव्रज) का कण्व वंश :—

पुराणों के अनुसार शुङ्ग वंश के अन्तिम नरेश देवभूमि व्यसनी थे। अपने प्रधानमंत्री वासुदेव की कन्या पर ही उन्होंने बलात्कार करने की चेष्टा की। कन्या मर गई। कन्या की मृत्यु से दुःखी होकर वासुदेव ने राजा को मरवा दिया। बाद में स्वयं ही राज्यभार ग्रहण किया। इस वंश में कुल ४ राजा हुये (१) वासुदेव (२) भूमिमित्र (३) नारायण (४) सुशर्मा, और कुल राज्यकाल ८५ वर्ष हुआ। वासुदेव का वंश कण्व वंश कहलाया। जैसा पिछले अध्याय में लिख चुके हैं कि किसी अशुद्धि के कारण कण्व वंश का राज्यकाल भागवत पुराण से ३४५ वर्ष दे दिया गया है यद्यपि राजाओं की संख्या ४ ही बताई है। दूसरे सभी पुराणों में कण्व वंश का राज्यकाल ८५ वर्ष दिया है।

अतः ९१८—८५=८३३ ईसा० पूर्व यह वंश रहा।

(८) मगध (गिरिव्रज) का आंध्र वंश :—

पुराणों के अनुसार कण्व वंशीय सुशर्मा का वधकर आन्ध्र वंशीय वृषल शिशुक ने आंध्र वंश का राज्य स्थापित किया। आंध्र वंश परम्परा में वृषल शिशुक के बाद ३२ राजाओं के नाम आते हैं १. सिंहक २. कृष्ण ३. श्री मल्ल ४. पूर्णोत्संग ५. श्री शातकर्णि ६. स्कन्द स्तम्भि ७. लम्बोदर ८. अपीटक ९. मेघस्वाति १०. शातस्वाति ११. स्कंद-स्वातिकर्ण १२. मृगेन्द्र १३. कुन्तल १४. सौम्य १५. शात (स्वाति कर्ण) १६. पुलोम १७. मेघ १८. अरिष्ट १९. हाल २०. मण्डलक २१. पुरिन्द्रसेन २२. चकोर २३. महेन्द्र २४. शिव २५. गौतमी पुत्र २६. पुलोम II २७. शिवश्री २८. शिव स्कंद २९. यज्ञश्री ३०. विजयश्री ३१. चन्द्रश्री (चन्द्रमस) ३२. पुलोमा III।

आन्ध्रवंश का राज्यकाल ५०६ वर्ष बताया गया है।

अत: ८३३—५०६=३२७ ईसा० पूर्व तक रहा।

आन्ध्रवंश व शंकराचार्य :—

आन्ध्र वंश का प्रारम्भ ८३३ ईसा० पूर्व हुआ और भगवान बुद्ध का जन्म पुराणों के अनुसार १८२४ ईसा० पूर्व से पहिले हुआ। अर्थात् आन्ध्र वंश के प्रारम्भ होने पर बुद्ध भगवान को करीब एक हजार वर्ष हो चुके थे। अहिंसा का भारत में प्रचार जोर पर था। इससे क्षत्रियों में क्षात्र-बल की उपेक्षा हुई और जन-साधारण में संसार व जीवन से ही उपेक्षा का भाव फैला, और राष्ट्र कमजोर हुआ मौर्य वंशीय शालिशुक के काल में, तथा शुङ्गवंशीय वसुमित्र के काल में विदेशी आक्रमण होना प्रारम्भ हो गये।

अत: ५२० ईसा० पूर्व (अध्याय १) में केरल में शंकराचार्य का जन्म होता है जिन्होंने अपनी ३१ वर्ष की अल्प आयु में पुन: वैदिक धर्म की स्थापना की और क्षात्र धर्म की ओर लोगों का ध्यान खींचा।

आन्ध्र वंश की समाप्ति पर भारत का चित्र :—

आन्ध्र वंश की समाप्ति पर एक विचित्र सा दृश्य दिखाई देता है। शक, यवन, हूणों आदि के कुचक्र चालू हो गये थे। आन्ध्र वंश के साथ मगध राज्य की समाप्ति होती है गिरिव्रज अब राज्य शक्ति का केन्द्र नहीं रहता। पुराने पुराण भागवत, आदि सब केवल आगे का संकेत कर समाप्त हो जाते हैं। विष्णु पुराण, वायु पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण में गुप्तों का प्रारम्भिक इतिहास है।

केवल 'कलियुग राज वृत्तान्त' में जो 'भविष्य पुराण' का भाग है आन्ध्र वंश के अन्तिम दो राजाओं का और गुप्त वंश के राज्य स्थापित करने का पूर्ण वृत्तान्त मिलता है। गुप्त वंश श्री गुप्त नामक व्यक्ति ने चलाया यह अयोध्या के सामन्त थे और अपने को सूर्यवंशी होने का गर्व करते थे। श्रीगुप्त के पुत्र घटोत्कच हुये और उनके पुत्र चन्द्रगुप्त।

चन्द्रगुप्त व उसका पुत्र समुद्रगुप्त आन्ध्र वंश के अन्तिम राजा चन्द्रमस (चन्द्रश्री) व पुलोमा तृतीयजो अल्पवयथा के यहाँ नौकर भी थे व अयोध्या के सामन्त भी थे। चन्द्रगुप्त, चन्द्रमसव उसके पुत्र पुलोमा तृतीय को मार-कर स्वयं राजा बना, पर गिरिव्रज पर अधिकार न पा सका, उस पर दूसरे अन्य सामन्तों ने अधिकार कर लिया। तब चन्द्रगुप्त ने कुसुमपुर को पाटलीपुत्र का नाम दे राजधानी बनाई।

समुद्रगुप्त यद्यपि प्रारम्भ से ही युवराज के रूप में चन्द्रगुप्त द्वारा मनोनीत कर दिये गये थे, राम की तरह वह एक रूप से वनवास में ही रहे। उन्हें कन्नौज में रखा गया और उनको तक्षशिला में विद्रोह कुचलने के लिये सिन्धु तीर पर भी रहना पड़ा। चन्द्रगुप्त ने सात वर्ष राज्य किया और वह समुद्रगुप्त के सौतेले भाई 'कच' को अब राजा बनाना चाहते थे समुद्रगुप्त ने 'कच' का वध किया, शायद यही 'रामगुप्त' हो और सम्भ-वतः तभी चन्द्रगुप्त का देहान्त हो गया या मारा गया, समुद्रगुप्त बड़ा शक्तिशाली राजा हुआ और उसने ५१ वर्ष राज्य किया। सम्भवतः सैलू-कस से उसी का युद्ध हुआ। सम्पूर्ण भारत, लंका, असम और पश्चिम सीरिया तक उसका प्रताप रहा। स्मिथ ने उसे भारत का नैपोलियन कहा है।

पाटलीपुत्र का गुप्त वंश (३२८ या ३२७ ई० पू० से ८३ ई० पूर्व तक)

इस गुप्त वंश के राजा अपने को सूर्यवंशी कहते थे।। पुराणों के अनुसार चन्द्रगुप्त ने कुसुमपुर को विकसित कर पाटलीपुत्र बसाया, और मगध राज्य की समाप्ति पर उसे राजधानी बनाया। गुप्त वंश का पुराणों में आंध्रभृत्य वंश भी नाम आता है। इस वंश ने २४५ वर्ष राज्य किया।

(१) चन्द्रगुप्त प्रथम :

यह सूर्यवंशी लच्छी क्षत्रिय था लिच्छियों के विदेह व कौशल में राज्य थे। इनके नौ (९) कुटुम्ब थे। आठ कुटुम्बों ने एकसंघ बना रखा था और एक शासन चलता था। चन्द्रगुप्त ने इनको विजय कर अपने राज्य में

मिला लिया था और राजधानी पाटलीपुत्र रखी थी। गुप्त वंश के राजा क्योंकि सूर्यवंशी थे, तथा उनकी अधिकतर प्रजा भी सूर्यवंशी थी, इसलिये वह अपने नाम के साथ 'आदित्य' लगाते थे। जिसका अर्थ 'सूर्य' है। (मौर्य अपने नाम के साथ कोई वंश का नाम नहीं लगाते थे) चन्द्रगुप्त प्रथम ने ७ वर्ष शासन किया।

३२७—७=३२० ईसा पूर्व तक।

(२) **समुद्रगुप्त :**

इसने ५१ वर्ष राज्य किया और बड़ा प्रतापी राजा हुआ सूर्यवंशी होने के कारण इसने राज्यारोहण अयोध्या में कराया। इसने बहुत बड़ी सेना लेकर पूरा भारत ही अपने राज्य में कर लिया था। इसने तक्षशिला से ग्रीक लोगों को भगाया और पश्चिम में वह हिरात तक जीता, पूर्व में असम इसके शासन में था, दक्षिण में लंका (सिंहल द्वीप) इसके आधीन था। पुराणों के अनुसार समुद्रगुप्त संसार का सबसे बड़ा राजा था। उसने अश्वमेध यज्ञ किया, सीलोन, वेकट्रिया व असीरिया उसको कर देते थे। विदेशी दूत उसके राजदरबार को सुशोभित करते थे, और विदेशी राजा उसको उपहार भेजते और विवाह सम्बन्ध रखने से अपने को गौरवान्वित अनुभव करते थे।

श्री कृष्णमाचारी के अनुसार यह ही समुद्रगुप्त 'अशोक' के नाम से प्रसिद्ध हुआ, उसका अलग से वर्णन करेंगे।

स्मिथ को आश्चर्य होता था, ऐसे प्रतापी राजा का नाम भारत के इतिहास में नहीं है।

पुराणों के अनुसार इस वंश में ८ राजा हुये, पर आज दस तक मानते हैं और राज्यकाल २५० वर्ष तक।

क्र०	राजा का नाम	वंश का नाम	उपाधि
१.	चन्द्र	गुप्त	विजय—आदित्य
२.	समुद्र	गुप्त	अशोक—आदित्य

क्र०	राजा का नाम	वंश का नाम	उपाधि
३.	चन्द्र II	गुप्त	विक्रम—आदित्य
४.	कुमार	गुप्त	महेन्द्र—आदित्य
५.	स्कंद	गुप्त	प्रताप—आदित्य
६.	स्थिर	गुप्त	प्रकाश—आदित्य
७.	नरसिंह	गुप्त	बल—आदित्य
८.	कुमार II	गुप्त	कर्म—आदित्य

समुद्रगुप्त के काल में यूनानी आक्रमणकारी थे। शकों का नाम नहीं आता है।

चन्द्रगुप्त II को विक्रम-आदित्य उपाधि होने के कारण उज्जैन के विक्रमाजीत से मिला दिया गया, यह पुराणों के अनुसार अशुद्ध है गुप्त वंश को मालव गणराज्य के विक्रमाजीत पुत्र गन्धर्वसेन से मिलाना पुराणों पर अविश्वास व अंग्रेजों तथा उनके अनुयायी इतिहासकारों के भ्रम उत्पन्न करने का परिणाम है।

गुप्त वंश के राजाओं को हूणों से सम्बन्ध पड़ा और उन्होंने हूणों के दर्प को चूर्ण करने में विशेष सफलता पाई।

फिर धीरे-धीरे गुप्त वंश का ह्रास हुआ और सिमटकर राजधानी के आस-पास ही रह गया।

गुप्त वंश के पश्चात् राज-शक्ति का केन्द्र :—

गुप्त वंश के ह्रास के प्रारम्भ होने पर राजशक्ति मालवा पहुँच गई। उस समय शकों का जोर बढ़ रहा था।

'कलियुग-राज्य-वृत्तान्त' जो 'भविष्य महापुराण' का अंग आगे चलकर अग्नि-वंश का वर्णन देता है। इस वंश के चार उप-विभाग हैं १. पंवार २. चाहूमान अर्थात् तोमर ३. शुल्क या चौलक्य ४. पृथीहार या प्रतिहार। ७२ अध्यायों में अग्नि वंश का वर्णन दिया है जिसमें ४४ अध्याय केवल दो राजा विक्रमाजीत व शालिवाहन के कार्यों का वर्णन देते

हैं। इस पुराण के अनुसार यह दोनों राजा पंवार-वंश के थे। विक्रमाजीत जो गन्धर्वसेन के पुत्र थे' इस वंश में आठवें स्थान पर आते हैं वह उज्जैन के राजा हुये। उन्होंने शकों को निर्णायक युद्ध में परास्त किया और 'शकारि' कहलाये। उन्होंने कुल भारत पर राज्य किया—हिमालय से रामेश्वरम् तक और पश्चिम में हिरात तक। शक विजय के उपलक्ष में विक्रम संवत ५७ ईसा० पूर्व से चलाई। कालिदास आदि नवरत्न इन्हीं के दरबार की शोभा बढ़ाते थे।

शालिवाहन भी इसी वंश में ११ वें स्थान पर आते हैं। उन्होंने शकों को सम्भवतः हिन्दू धर्म में लेकर सदा के लिये समस्या का उन्मूलन किया। इस घटना के उपलक्ष में शक संवत, विक्रम संवत् के १३५ वर्ष बाद प्रारम्भ हुआ।

हूणों की पूर्ण पराजय यशोधर्मा द्वारा हुई जो मध्यप्रदेश का था।

इस प्रकार भारत पुनः जगमगा उठा। विभिन्न देश के भागों से क्षात्र-शक्ति का उदय हुआ। यहां तक कि उत्तर भारत को सम्राट हर्षवर्धन ने तथा दक्षिण भारत को सम्राट पुलकेशी II ने पुनः संगठित भी कर लिया। किन्तु यह संगठन स्थिर न हो सका। हूण, शक आदि पिछले आक्रांता तो समाप्त हो चुके थे किन्तु भारत पर आक्रमणों का अन्त न हो पाया।

अध्याय–४

(पुराणों के अतिरिक्त भारतीय इतिहास के स्रोत)

पुराणों के अतिरिक्त भारत के इतिहास के सम्बन्ध में (मुसलमान के आक्रमणों से पहिले) कोई लिखित विश्वसनीय सामग्री नहीं मिलती।

भगवान बुद्ध का जन्म कब हुआ और उनका निर्वाण काल क्या है, इस पर भी पुराण ही प्रामाणिक मालूम होते हैं। उनका जन्म लुम्बिनी (नेपाल) में हुआ और ८० वर्ष की आयु में कुशीनगर में निर्वाण प्राप्त किया। २९ वर्ष की आयु में घर छोड़ा। ६ वर्ष तपस्या की और अन्त में वैसाख पूर्णिमा को गया में पीपल के पेड़ के नीचे समाधि लगा बोध प्राप्त किया। तत्पश्चात् ४५ वर्ष धर्म प्रचार किया। यह शिशुनागवंशीय महाराज बिम्बिसार के काल में धर्म प्रचार कर रहे थे। परन्तु बौद्धिक ग्रन्थों में परम्परा-विच्छेद के कारण काफी गड़बड़ी हुई है।

बौद्ध संवत्, न जन्म, न बोध पर, न निर्वाण पर चला। फाहियान जब भारत आया है, तब उसने एक स्थान पर लिखा है कि बुध भगवान की मूर्ति हान (चीन) देश में महाराज पिंग के काल में लगाई गई। यह उनके निर्वाण काल से करीब ३०० वर्ष बाद लगी। पिंग का शासन काल ७५० ई० पूर्व से ७१९ ई० पूर्व तक माना जाता है। अर्थात् इससे भी भगवान बुद्ध का निर्वाण काल ११०० ई० पूर्व से भी पहिले था चीनी लोग १०२७ ईसा पर्व मानते हैं।

हुवेनसांग दूसरा चीनी यात्री जब हर्ष के काल में आया, तब वह चीन में निर्वाण-काल से सन्तुष्ट न था और उसने भारत में बौद्ध तीर्थों के भ्रमण में भगवान बुद्ध के बारे में खोज की तो कोई प्रामाणिक तिथि न मिल पाई। उसके यात्रा विवरण के एक अंश का हिन्दी अनुवाद देते हैं :—

"साधारण परम्परा के अनुसार तथागत निर्वाण प्राप्ति के समय ८० वर्ष की आयु के थे और उनका देहावास वैसाख पूर्णिमा के दिन हुआ था। यह हमारे वर्ष के अनुसार तीसरे मास में है, परन्तु सर्वास्तिवादी (बौद्ध मत वाले) कहते हैं कि उनका देहावास कार्तिक की शुक्ल अष्टमी को हुआ जो हमारे यहाँ का नवां मास का आठवां दिन होता है। महात्मा बुद्ध के निर्वाण काल को भी भिन्न-भिन्न बताते हैं कुछ आज से १२०० वर्ष पहिले, कुछ १३०० वर्ष से पहिले और १५०० वर्ष से पहिले बताते हैं। कुछ ९०० वर्ष से १००० वर्ष के बीच में बताते हैं।"

बौद्धों का ऐतिहासिक ग्रन्थ **मञ्जूश्रीमूल कल्प** है जिससे करीब १४०० वर्ष का इतिहास मिलता, पर वह इतना अस्त-व्यस्त है कि उसे किसी ने प्रामाणिक नहीं माना है।

अशोक के बारे में तो बौद्ध ग्रन्थों में इतना गोल-माल है कि यह पहचानना भी कठिन है कि भारत के इतिहास में जो तीन अशोक आते हैं, उनमें से यह कौन-सा है। तीनों को इतना मिला दिया है कि चीनियों के अनुसार अशोक ८५० ईसा० पूर्व हुआ और सीलोन के बौद्ध लेखकों के अनुसार अशोक ३१६ ईसा० पूर्व हुआ। उनके पिता आदि के नाम भी भिन्न हैं। वह अलग अध्याय में देंगे।

एक और ऐतिहासिक ग्रन्थ कलहन द्वारा लिखित **'राजतरंगनी'** है। यह कश्मीर में लिखा गया। इसमें कश्मीर के राजाओं का विशेष वर्णन है। अशोक (धर्म, अशोक) जो गौड़ राजा था, तथा कनिष्क से तीसरी पीढ़ी में था, का विस्तार से वर्णन दिया है कि वह बौद्ध था तथा उसने बहुत से विहार व स्तूप बनवाये। इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद प्रो० यम० ट्रायर ने किया था और कई अंग्रेज इतिहासकार जैसे फलीट इसको प्रामाणिक मानते हैं। इसके अनुसार अशोक महान के राज्य सिंहासन पर बैठने का काल १२६० ईसा० पूर्व है। अर्थात् बुद्ध भगवान इससे बहुत पहले हुये। फलीट लिखता है कि पुराणों में दी वंशावलियों के अनुसार ही अशोकवर्धन को १२६० ईसा पूर्व मानकर काल गणना करनी चाहिये।

एक और ग्रन्थ जो इतिहासिक नाटक है, उसका भी यहां वर्णन कर

दें, वह है 'मुद्राराक्षण जिसके लेखक नाटककार विशाखदत्त थे यह बंगाल के थे। ऐतिहासिक होना व ऐतिहासिक नाटक लिखना दो भिन्न बातें हैं। इनके दो नाटक बनाये जाते हैं (१) मुद्राराक्षण (२) देवी चन्द्रगुप्तम। यह दूसरा नाटक गुप्त वंश के चन्द्रगुप्त द्वितीय के सम्बन्ध में कहा जाता है। अर्थात् इस लेखक का काल गुप्त वंश या उससे बाद है। स्मिथ ने 'देवी चन्द्रगुप्तम्' के कथानक को पूर्ण रूप से इतिहास विरुद्ध बताता है। मुद्राराक्षस में जितना इन्होंने पुराणों से लिया है; कि चाणक्य ने किस प्रकार राक्षस को जो अन्तिम नन्द वंश के राजा का मन्त्री था, चन्द्रगुप्त मौर्य का मन्त्री बनवाया, वह तो सत्य है, लेकिन विशाख दत्त ने अपने कथानक का स्थान मगध की राजधानी पाटलीपुत्र रखी है। यह अशुद्ध है। इस अशुद्धि का कारण बम्बई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री के० टी० तैलंग 'मुद्रा राक्षस' के सातवें संस्करण की प्रस्तावना १९२८ में लिखते हुये बताते हैं 'कि इस नाटक का जो कथा-स्थान पाटलीपुत्र या कुसुमपुर रखा गया है, वह इस कारण नहीं कि घटनायें पाटलीपुत्र में हुई, बल्कि इस कारण है कि लेखक के समय में पाटलीपुत्र ही प्रसिद्ध स्थान रहा होगा, और लेखक यह नहीं जान सका कि मौर्य वंश की राजधानी किसी अन्य स्थान पर थी।"

यही पूरी सामग्री थी जो 'भारतीय इतिहास की काल-गणना' निश्चित करते समय १७९३ ई० या १८५९ ई० में उपलब्ध थी या यह कहो १९०४ ई० तक उपलब्ध थी, जिसके आधार पर भारतीय इतिहास लिखा गया। न उस समय तक कोई पुरातत्व की खुदाइयां हुई थीं, न मुद्रायें निकली थीं और न आधुनिक कार्बन-परीक्षा आदि का उदय हुआ था।

इसलिये इस सम्बन्ध में अधिक न लिखकर आगे चलते हैं।

अध्याय–५

(जोन्स द्वारा भारतीय इतिहास की आधार शिला)

अब हम उस काल की बात कर रहे हैं जब १७५७ ई० में प्लासो युद्ध में विजय पाकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में शासन करने की अवस्था में आ गई थी। १७६१ ई० के पानीपत के युद्ध ने मराठों की शक्ति को ऐसा धक्का दिया कि वह उससे संभल न सके। बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ही सर्वोपरि शक्ति थी और १७७३ ई० में वारन हैसटिंग प्रथम गवर्नर-जनरल होकर काम कर रहा था। अंग्रेजी शक्ति के साथ पादरियों की सेना ने भी भारत में काम शुरु कर दिया था। वारन हैसटिंग की मंत्रि-परिषद में मैकाले नाम का एक अंग्रेज था। ईसाई मिशनरियों ने उसकी सहायता से धर्म-प्रचार का कार्य शिक्षा के माध्यम से आगे बढ़ाया। धीरे-धीरे ईसाई मिशनरियों का साहस बढ़ता गया और वह हिन्दू धर्म, हिन्दू रीति रिवाज, हिन्दू देवताओं का भयावह चित्र खींचने लगे। पादरी लोग बाजार व सड़कों पर हिन्दू देवताओं—गणेश, हनुमान आदि के चित्र टांगकर खिल्ली उड़ाने लगे। एक अंग्रेज महिला ने तो हिन्दू धर्म को गाली देने के लिये योग्य भाषा न पाकर उसे 'Crystallised hnmorality "दुष-चरित्रता" का नाम ही दे डाला। यह वह काल है जब न राजा राम मोहन राय, न महर्षि दयानन्द सरस्वती इतिहास पटल पर आ पाये थे। मुसलमानों के शासन में भी ऐसा आक्रमण हिन्दू धर्म, संस्कृति व हिन्दू साहित्य पर नहीं हुआ था।

इस काल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के न्याय-विभाग में एक अंग्रेज विलियम जोन्स फारिस से 'दबिस्ता' ग्रन्थ के साथ आये दबिस्ता में हिन्दू राजाओं का अलकजेंडर से पूर्व का ६००० वर्ष का इतिहास था। उनको यह असम्भव सा लगा। यह ईसाई मान्यताओं के विरुद्ध था जो सृष्टि की

उत्पत्ति ही ६००० वर्ष मानती थी। और उन्होंने सन् १७८४ में बंगाल में भारत के इतिहास के अध्ययन के लिये 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' का गठन किया, इसके विलियम जोन्स प्रथम अध्यक्ष हुये, उसके सभी सदस्य जो उसमें भाग लेते थे अंग्रेज थे। अभी तक अंग्रेजी स्कूल तो खोले जा रहे थे पर पहला अंग्रेजी कालिज 'पोर्ट विलियम कालिज' की नींव १८०० ई० में पड़ी थी अतः अंग्रेजी पढ़े बंगाली अभी जन्म न ले पाये थे।

विलियम जोन्स ने जिनका काम तो न्याय विभाग में काम करना था, एक पंडित राधाकान्त की सहायता से भागवत पुराण पढ़ना प्रारम्भ किया, और महाभारत युद्ध के बाद की वंशावलियों को लेकर, भारत के इतिहास की रूपरेखा बनानी प्रारम्भ की। उसने देखा कि भागवत पुराण के अनुसार तो सृष्टि रचना को करोड़ों वर्ष हो चुके हैं और सातवें मनु के काल को भी लाखों वर्ष हो चुके हैं तथा महाभारत युद्ध को यह पुराण ईसा के जन्म के ३००० वर्ष से भी पूर्व बताता है, इसलिये उसको तो पूर्ण अविश्वसनीय मानकर छोड़ दिया।

(१) जनवरी १७७८ ई० में उन्होंने महाभारत काल से लेकर मगध-राज्य के राजाओं की वंशावलियां आंध्र वंश तक की प्रकाशित की। उन्होंने उनका काल ३१०१ ईसा पूर्व से लेकर ४५२ ईसा पूर्व लिखा। (लार्ड टेंगमाउथ ने "सर विलियम जोन्स का पूरा साहित्य" १३ पुस्तकों (Volumes) में १८०७ ई० में छापा है।)

यह तालिका इस प्रकार थी।

क्र०	वंश का नाम	राजा की संख्या	राज्यकाल	ईसा-संवत्
१.	ब्रहद्रथ वंश	२०	१००० वर्ष	३१०१ ई० पूर्व से २१०० ई० पूर्व
२.	प्रद्योत वंश	५	१३८ ,,	२१०० ई० पूर्व से १९६२ ई० पूर्व
३.	शैशुनाग वंश	१०	३६० ,,	१९६२ ई० पूर्व से १६०६ ई० पूर्व
४.	नन्द वंश	१	१०० ,,	१६०२ ई० पूर्व से १५०२ ई० पूर्व

क्र०	वंश का नाम	राजा की संख्या	राज्यकाल	ईसा-संवत्
५.	मौर्य वंश	१०	१३७ ,,	१५०२ ई० पूर्व से १३६५ ई० पूर्व
६.	शुंग वंश	१०	११२ ,,	१३६५ ई० पर्व से १२५३ ई० पूर्व
७.	कण्व वंश	४	३४५ ,,	१२५३ ई० पूर्व से ९०८ ई० पूर्व
८.	आंध्र वंश	३०	४५६ ,,	९०८ ई० पूर्व से ४५२ ई० पूर्व
		९२	२६४२	

इस तालिका में निम्नलिखित अशुद्धियाँ थीं :—

(१) वह जानता था कि कलियुग १३०२ ईसा० पूर्व आरम्भ हुआ महाभारत कलियुग से ३६ वर्ष पूर्व हुई थी यही भागवत पुराण में दिया है। ब्रहद्रथ वंश के महाभारत काल से २२ राजा दिये हुये न कि २० राजा। उनका राज्यकाल भी १००६ वर्ष दिया है, न कि १००० वर्ष।

(२) नन्दवंश के अन्त की कहानी विलियम जोन्स ने पुराण में दी कि ब्राह्मण चाणक्य की सहायता से राजा को मारकर मौर्य वंश का चन्द्रगुप्त सिंहासन पर बैठा, परन्तु नन्द वंश में ९ राजा हुये, एक नहीं। महापद्मनन्द प्रथम राजा थे और अन्तिम राजा जो मारा गया वह धनानन्द था।

(३) मौर्य वंश में १२ राजा हुये, न कि १०, और उनका राज्यकाल ३१६ वर्ष है न कि १३७ वर्ष।

(४) शुङ्ग वंश में १० राजा हुये, पर उनका राज्यकाल ३०० वर्ष है न कि ११२ वर्ष।

(५) कण्व वंश के ४ राजा का राज्यकाल ८५ वर्ष है। भागवत पुराण में यह अशुद्धि है पर अन्य सभी पुराणों में यह ८५ वर्ष बताया गया है।

(६) आन्ध्र वंश के ३२ राजाओं का राज्यकाल ५०६ वर्ष है, न कि ४५० वर्ष।

यह तालिका जब १७८८ ई० में जोन्स ने छपवाई तो उसके साथ यह भी लिखा कि 'भगवत मित्र' ग्रन्थ के अनुसार ब्रहद्रथ वंश के २० वें राजा सत्यजीत के पुत्र पुरंजय को मार कर उसके मंत्री शुङ्ग ने अपने पुत्र प्रद्योत को सिंहासन पर बिठाया। क्रान्ति से ठीक दो वर्ष बाद बुध भगवान मगध राज्य में आये थे। इसलिए उनका काल लगभग २१०० ईसा० पूर्व या जो आज से (१७८८+२१००)=३८८८ वर्ष पहिले पड़ता है। और क्योंकि यह पुराण की वंशावलियां पूर्ण क्रम से हिन्दू-राज्य की समाप्ति तक (आंध्र वंश) दी है, अतः उनको छापा जाता है। वह यह भी लिखता है कि, आंध्र राजा 'चन्द्रभिज' के मरने के बाद जो विक्रमाजीत से ३९६ वर्ष पहिले मरा अर्थात् ४५२ ईसा० पूर्व में। उसके पश्चात् मगध राज्य का नाम नहीं आता।

[जोन्स के इस कथन में भी अशुद्धियाँ थीं। ब्रहद्रथ वंश का २० वां राजा सत्यजीत तो हुआ, पर २१ वाँ राजा वीरमित था जिसका पुत्र रिपुंजय राजा हुआ, पुंजय नहीं, वह २२ वां राजा था जो कि मारा गया। दूसरी अशुद्धि यह है कि बुध भगवान प्रद्योत वंश से पहिले नहीं, बल्कि प्रद्योत वंश के पश्चात् आने वाले शैशुनाग वंश के पांचवे राजा बिम्बिसार के काल में प्रचार करते हुए देखे गये। यह मत सभी पुराणों और स्वयं बौद्ध मत मानने वालों का है। जोन्स साहिब इधर पुराणों पर चल रहे हैं और उधर 'भगवत-मित्र' जैसे गैर ऐतिहासिक ग्रन्थ से बुद्ध भगवान की तिथि ले रहे हैं। शायद इसी से इस तालिका में अन्य अशुद्धियां भी हैं।]

इस तालिका को छपवाते समय वह लिखने हैं कि 'चन्द्रभिज' तक जो वंशावली इस समय दी जा रही है वह हिन्दुओं द्वारा बहुत प्रमाणिक मानी जाती है। यदि कोई और प्रमाण मिले तब इसमें यदि कोई संशोधन हुआ तो दिया जावेगा। पर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि हिन्दुओं के तीन युग कृति, त्रेता, व द्वापर यह प्रोऐतिहासिक युग है केवल चौथा युग ऐतिहासिक युग (कलि) है, पर यह २००० ईसा० पूर्व से अधिक नहीं खींचा जा सकता है।

(२) विलियम जोन्स का पुनर्विचार और दूसरी तालिका :—

विलियम जोन्स अब सोचते हैं कि नन्द वंश का एक राजा १००

वर्ष राज्य करेगा यह सम्भव नहीं। मगध राज्य के कण्व वंश के ४ राजा ३४५ वर्ष राज्य करेंगे यह तो बिल्कुल असम्भव है। पुराणों में काल बहुत बढ़ा-चढ़ाकर दिया है। वह लिखते हैं कि मैं यह तो मान सकता हूँ कि उस काल में जब अर्जुन की सन्तानें राज्य कर रही थी तो ३ राजा १०० वर्ष राज्य कर लेते हों, पर एक राजा १०० वर्ष राज्य करे सम्भव नहीं है और न यह सम्भव है कि ४ राजा ३४५ वर्ष राज्य करें (अर्थात् प्रति राजा राज्य-काल ८६ वर्ष ४ महीने हो)।

विलियम जोन्स ने इस सम्बन्ध में न दूसरे पुराण देखे और न 'भागवत पुराण' को ठीक से पढ़ा जिसमें नव-नन्द का वर्णन है।

अब उन्होंने बुद्ध भगवान के काल को विभिन्न स्रोतों से देखना प्रारम्भ किया। तब उन्होंने अब्दुल फ़ज़ल (अकबर के काल का इतिहास-कार) द्वारा बुध भगवान के सम्बन्ध में दी हुई तिथि, तथा तिब्बत में माने जाने वाले तिथि, दोनों छोड़कर एम० डी० गुनीस द्वारा दी हुई चीनी तिथि को सत्य मानकर—भगवान बुध की जन्म तिथि १०२७ ईसा पूर्व लेना निश्चित किया और दूसरी तालिका निम्न प्रकार की बनाई :—

नाम	काल
अभिमन्यु पुत्र अर्जुन	२०२९ ई० पूर्व
प्रद्योत	१०२९ ,,
बुध	१०२७ ,,
नन्द	६९९ ,,
बालिन (आन्ध्र वंश)	१४९ ,,
विक्रमाजीत	५६ ,,
देवपाल गौड़ के राजा	२३ ,,

यह विचित्र तालिका है। इसमें वंश सब छोड़ दिये गये, व्यक्ति लिये गये। फिर अभिमन्यु तो कभी सिंहासन पर बैठा नहीं, वह महाभारत युद्ध में मारा गया, तो अभिमन्यु से अर्थ है क्या महाभारत-युद्ध ? या अभिमन्यु से अर्थ है परीक्षित अर्थात् कलि का प्रारम्भ ? स्पष्ट नहीं है।

इस तालिका के सम्बन्ध में श्री कृष्णामाचारी का मत है कि यह तालिका विलियम जोन्स ने अपने संस्कृत पढ़ाने वाले पं० राधाकान्त की रचित पुस्तक 'पुराण अर्थ-प्रकाश' को आधार लेकर बनाई है। पं० राधाकान्त शर्मन ने यह पुस्तक 'पुराण-अर्थ-प्रकाश' 'भागवत पुराण' के आधार पर कुछ दिन पूर्व लिखी थी। इसमें 'भागवत मित्र' जो किसी गोस्वामी का रचित था, का एक श्लोक दिया है कि भगवान बुद्ध के प्रगट होने से १००२ वर्ष पूर्व कलियुग लगा था और बुद्ध भगवान प्रद्योत से २ वर्ष पश्चात् प्रगट हुये थे।

इसलिये श्रीकृष्णमाचारी के अनुसार जोन्स ने बुद्ध की तिथि तो चीनी तिथि १०२७ ईसा० पूर्व ली और प्रद्योत को दो वर्ष पूर्व १०२९ ई० पूर्व दिखाया है तथा कलियुग का प्रारम्भ भगवान बुद्ध से १००२ वर्ष पूर्व अर्थात् (१०२७+१००२)=२०२९ ईसा० पूर्व दिखाया है। जिसे अभिमन्यु लिख दिया है। और नन्द व बालिन (सम्भवतः आन्ध्र का प्रथम राजा वृषक शिशुक है) का समय कम करके अपने मतानुसार दिखा दिया है। पिछली तालिका के कथन में आंध्र के अन्तिम राजा व विक्रमाजीत में ३९६ वर्ष का अन्तर बताया था। परन्तु प्रथम राजा से ही अब वह केवल (१४९—५६)=९३ वर्ष का रह गया।

इस प्रकार इस दूसरी तालिका के द्वारा कलियुग के प्रारम्भ का समय २०२९ वर्ष रह गया। यही पहली तालिका प्रकाशित करते समय जोन्स ने कहा था कि 'कलि' का समय २००० ईसा पूर्व से अधिक नहीं हो सकता।

(३) विलियम जोन्स की तीसरी तालिका :—

पर विलियम जोन्स के मन में कृतयुग, त्रेता, व द्वापर युग की घटनायें, जिनको सभी भारतवासी सत्य मानते थे (भला कृष्ण, राम, व हरिश्चन्द्र को कौन भूल सकता था) घूम रही थीं। यदि कलियुग को ही ईसा० से २००० वर्ष पूर्व प्रारम्भ होना मान लिया, तो भी हिन्दुओं के प्राचीनता का कहाँ ओर-छोर है। अतः जोन्स ने पुनः अपने प्रयत्न प्रारम्भ किये।

अब उन्होंने अब्बुल फ़जल लिये। अब्बुल फ़जल ने बुद्ध भगवान का जो काल बताया है, उसमें प्रद्योत से लेकर अभिमन्यु (कलि) तक २० पीढ़ी के अन्तर को १००० वर्ष घटाकर ७०० वर्ष कर दिया। इस पर भी अभिमन्यु (कलि) का काल २३६८ ईसा० पूर्व आया।

प्रथम तालिका से :

क्र०		संख्या	राज्यकाल
१.	ब्रहद्रथ वंश	२०	१००० वर्ष (३१०१ ईसा पूर्व से)
२.	प्रद्योत वंश	५	१३८ वर्ष

द्वितीय तालिका से :

नाम	काल
अभिमन्यु	२०२९ ई० पू०
प्रद्योत	१०२९ ,,
बुध (चीन)	१०२७ ,,
नन्द	६९९ ,,

तीसरी तालिका से :

नाम	काल
अभिमन्यु	२३६८ ई० पूर्व
प्रद्योत	१६६८ ,,
बुध	१६६६ ,,
(अ० फजल)	

यह तो २००० ईसा पूर्व से और बढ़ गया, अतः जोन्स ने उसको तुरन्त छोड़ दिया।

(४) विलियम जोन्स की चौथी तालिका :—

अब जोन्स ने 'दबिस्ता' में दिये वर्णन से बुद्ध भगवान का काल निकाला, जिसके अनुसार बुद्ध भगवान का जन्म कलियुग के प्रारम्भ होने से १० वर्ष पहले हुआ। परन्तु उन्होंने बुद्ध भगवान की जन्म तिथि, वही चीनी तिथि १०२७ ईसा० पूर्व रखी। केवल "दबिस्ता" के इस वाक्य का उपयोग किया कि भगवान बुद्ध कलियुग के प्रारम्भ से १० वर्ष पहले जन्मे थे। उन्होंने 'दबिस्ता' में दिये हिन्दू राजाओं के ६००० वर्ष के इतिहास को देखना भी उचित नहीं समझा। और चौथी तालिका निम्न प्रकार बनी।

चौथी तालिका		द्वितीय तालिका	
बुद्ध (चीनी)	१०२७ ई० पूर्व	अभिमन्यु	२०२९ ई० पूर्व
परीक्षित (कलि)	१०१७ ई० पूर्व	प्रद्योत	१०२९ ई० पूर्व
(दबिस्ता अनुसार २०		बुद्ध (चीनी)	१०२७ ई० पूर्व
वर्ष बाद)		नन्द	६९९ ई० पूर्व
प्रद्योत		प्रद्योत व नन्द में	
(यदि ७०० वर्ष लें		(१०२९—६९९) ३३० वर्ष का	
तालिका III से)	३१७ ई० पूर्व	अन्तर है।	
(यदि १००० लें			
तालिका II व I से)	तो १७ ई० पूर्व		
नन्द			
यदि ३३० वर्ष का	तो १७ ई० पूर्व		
अन्तर लें	या ३१३ ई० (AD)		

इस चौथी तालिका में प्रद्योत व नन्द में द्वितीय तालिका के अनुसार ३३० वर्ष अन्तर लेने पर नन्द का काल १७ ई० पूर्व या ३१३ ई० (A. D.) आता है। इस प्रकार परीक्षित का समय (कलि का प्रारम्भ) १०१७ ईसा० पूर्व आ पाता था परन्तु जोन्स जानते थे कि नन्द को विक्रमाजोत (५६ या ५७ ई० पूर्व संवत वाले) से बाद में रखना, भारत में कोई नहीं मानेगा। क्योंकि विक्रम संवत चालू थी उसको गड़बड़ नहीं किया जा सकता था।

इस पर भी चौथी तालिका को देकर विलियम जोन्स लिखते हैं कि "इस शुद्धिकरण का परिणाम यह होता है कि विक्रमाजीत को नन्द से पहले लाना होगा, पर सब पण्डित इस मत के विरुद्ध हैं और 'भगवत मित्र' पुस्तक की यह बात कि कलियुग बुद्ध से १००० वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ सत्य बन जाती है। पर इस शुद्धिकरण से यह निकलता है कि वालिन को ५ वीं शताब्दी में तथा चन्द्रभिज को १० वीं शताब्दी ईसा (A. D.) में लाना होगा।'

जोन्स आगे लिखते हैं 'हमने इस देश के राज्य के दीर्घकाल अर्थात् ३८०० वर्ष के इतिहास की रूपरेखा बड़ी सहानुभूति पूर्वक विचार करके दी है, तब भी यहां के ब्राह्मणों ने इतिहास को बहुत खींचा है और काल बढ़ा दिया है और कथाओं से उसे अस्पष्ट कर दिया है।

जोन्स के ३८०० वर्ष का अर्थ है परीक्षित तक (१०१७+१८९०) लगभग २९०० वर्ष और मनु तक लगभग ९०० वर्ष जोड़कर कुल ३८०० वर्ष।

इस कथन के पश्चात् भी विलियम जोन्स का मन सन्तुष्ट नहीं हुआ और वह आगे लिखते हैं कि "भारत के हिन्दू अपने प्राचीन इतिहास पर इतने दृढ़ हैं कि हम यूरोपियन लोग जब आपस में बात करते हैं (उस रायल एशियाटिक सोसाइटी में सब सदस्य अंग्रेज या विदेशी ही थे) तो यह कहना पड़ता है कि इन भारतीयों के सामने कोई निश्चित प्रमाण देना होगा, तब संभवतः इनमें से निष्पक्ष और समझदार व्यक्ति सत्य को देख पायेंगे। जिसका कि परिणाम विचित्र होगा। अतः हम यूरोपियन लोगों को इन भारतीयों की प्राचीनता के दृढ़ मत से चकित न होकर और अशुद्ध ऐतिहासिक माया जाल में न पड़कर सत्य को प्रकाश में लाना चाहिये।

जोन्स अब 'कलि' को ही २००० ईसा पूर्व नहीं मानने को तैयार थे, बल्कि यह दिखाना चाहते थे कि हिन्दुओं की युगों की गणना ही काल्पनिक है और पूरा इतिहास ३८०० वर्ष से अधिक नहीं हो सकता।

(५) विलियम जोन्स का अन्तिम प्रयास तथा भारतीय इतिहास की आधार-शिला की घोषणा :—

विलियम जोन्स किसी ऐसे प्रमाण की खोज में लगे रहे जो ब्राह्मणों की पहुँच से दूर हो और जिसे काटा न जा सके। अब उन्होंने पुराण तथा बुद्ध भगवान दोनों को छोड़ दिया। उन्होंने भारत पर अलकजेंडर के आक्रमण के बारे में कुछ पढ़ा और उन्हें दो नाम 'सण्ड्रोकोट्टस' जो एक व्यक्ति या राजा था और 'पालिब्रोथ्था' जो एक नगर था मिले। जोन्स ने उनको भारत के इतिहास में ढूंढ़ा और दोनों का मेल मिलाकर (अधिकतर ध्वनि

के आधार पर) अपने ही द्वारा गठित 'रायल एशियाटिक सोसाइटी' के साधारण अधिवेशन में जिसमें सभी अंग्रेज थे २८-२-१७९३ ई० को यह भाषण दिया :—

"क्योंकि मैंने अपने परिश्रम की दिशा हिन्दुओं व अरब लोगों की न्याय-प्रणाली (Jurisprudence) चुन रखी है अतः यह आप आशा नहीं कर सकते कि इतिहास के बारे में आपके ज्ञान को कुछ अधिक बढ़ा सकूँगा। फिर भी मैं कभी-कभी आपके सामने कोई नई बात रख सकूँगा। मैंने एक खोज की है, जो वास्तव में बिना प्रयास एकाएक मेरे हाथ लग गई, और उसे मैं आपको बिना बताये नहीं रह सकता। यह खोज किन तत्वों पर आधारित है, इसके लिये मैं एक पृथक लेख लिखूंगा जो आपकी लेख-माला में छप सकेगा। इस समय इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि 'पालिब्रोथ्या' जिसका निश्चित करना कि वह भारत का कौन-सा नगर है और जिसको हम विश्वास के साथ 'पाटलीपुत्र' नहीं कह पा रहे थे, एक समस्या बनी हुई थी। इसका कारण यह था कि 'पालिब्रोथ्या' गंगा व इराना-वोअस के संगम पर होना लिखा है, और इराना-बोअस को विश्वासनीय एम० डी० ऐनविली ने यमुना उच्चारित किया। परन्तु मुझे दो हजार वर्ष पूर्व की प्राचीन संस्कृत पुस्तक मिली जिसमें लिखा है कि हिरण्यबाहु (सुनहरी बांह) नामक नदी का नाम यूनानी लोगों ने इराना-बोकस कर दिया, और यह नदी मृदुल-ध्वनि वाली सोन ही है। अतः मैं विश्वास से कह सकता हूँ कि 'पालिब्रोथ्या' न प्रयाग था 'जो प्राचीन काल में कभी राजधानी नहीं रहा' न कन्नौज है, न गौड़ों का लक्ष्मावती है, बल्कि पाटलीपुत्र ही है जो प्रसिद्ध राजधानी थी गंगा और सोन के संगम पर बसी थी, जो कि अब पटना है। मैगस्थनीज ने अज्ञान वश या लापर-वाही से हिरण्यबाहु को इराना-बोअस लिख दिया और उसे एक अलग नदी बना दिया।"

जोन्स ने आगे कहा कि "इस खोज से एक और महत्वपूर्ण खोज निकली कि चन्द्रगुप्त अपने सैनिक अभियानों (जिनका सण्ड्रोकोट्टस के अभियानों से मेल मिलता है) के द्वारा उत्तर भारत का सम्राट बना और उसने अपनी राजधानी पाटलीपुत्र बनाई, जहाँ कि वह विदेशी राजाओं के

राजदूतों से मिलता था। अतः मैं कह सकता हूँ कि यह चन्द्रगुप्त ही सण्ड्रोकोट्टस है जिसने सैल्यूकस निकटोर से सन्धि की। और इस चन्द्रगुप्त का काल ३०० ईसा० पूर्व के करीब पड़ता है। इस चन्द्रगुप्त ने नन्द व उसके आठ पुत्रों को मार कर कैसे क्रान्ति की उसका वर्णन सोमदेव लिखित सुन्दर व शिक्षाप्रद कहानियों में, तथा संस्कृत के नाटक 'चन्द्र का राज्याभिषेक' जो त्रादसी (Tragedy) है में दिया हुआ है।"

जोन्स तब बड़ी प्रसन्नता से आगे बोले कि "हमने आज उस कठिन समस्या का हल पा लिया है जिसका हम लोग बार-बार विचार करने पर भी हल नहीं कर पा रहे थे, अर्थात् दो विशेष घटनाओं की तिथियाँ गोल, अंकों में निश्चित कर पाये। प्रथम घटना जल-प्लावन के थोड़े समय पश्चात् राम का सीलोन (लंका) जीतना है जो १२०० ईसा० पूर्व में हुआ और दूसरी घटना चन्द्रगुप्त मौर्य का राज सिंहासन पर बैठना है जो ३०० ईसा० पूर्व में हुआ। और उसके पश्चात् विक्रमाजीत आते हैं जो उज्जैन में हमारे ईसा० संवत के प्रारम्भ होने से ५७ वर्ष पूर्व मरे।"

और विलियम जोन्स का वह प्रमाण-सहित लेख, जिसका उन्होंने इस व्याख्यान में लिखने व छपवाने का वायदा किया था कभी न लिखा गया और उनका देहान्त २७-४-१७९४ को हो गया।

इस व्याख्यान में, बिना प्रमाण, चन्द्रगुप्त मौर्य का काल ३०० ईसा० पूर्व के करीब निश्चित कर विलियम जोन्स 'भारतीय इतिहास' के लिये एक आधार-शिला निश्चित कर गये। वह न इतिहासज्ञय थे, न उस समय कोई पुरातत्व विभाग था, न खुदाई थी, न शिलालेख थे, न मुद्रायें थीं, न कार्बन टेस्ट था, न संस्कृत साहित्य का अध्ययन था। कितने प्रसन्न थे विलियम जोन्स कि उन्होंने भारत की सांस्कृतिक व ऐतिहासिक प्राचीनता का ढोंग ही समाप्त कर दिया। राम को हुये केवल १२००+१८००= ३००० वर्ष हुए और जल-प्लावन (अर्थात् मनु) को हुये कुछ अधिक वर्ष और लगा लो और भारत का पूर्ण इतिहास १३०० या १४०० ईसा० पूर्व से अधिक का नहीं है। उन्होंने प्रारम्भ में २००० ईसा० पूर्व उदारता से देना चाहा था, वह भी नहीं निकला। ब्रिटिश साम्राज्य को मजबूत करने में,

उसको भारत के लिये एक वरदान के रूप में, तथा भारत को सभ्य बनाने में, क्या यह खोज सहायक सिद्ध नहीं होगी।

विलियम जोन्स के बाद फिर कितने ही अंग्रेजों ने भारत के इतिहास की खोज में कितना परिश्रम किया, कैसे अपना जीवन दे दिया और जोन्स के परिणामों को कैसे अटल बना दिया, यह स्वयं एक इतिहास है। क्या भारत इसका ऋणी न होगा ?

नहीं, भारतवासी कभी कृतघ्न नहीं होते। आज तक विलियम जोन्स के दिये पैमाने से कि चन्द्रगुप्त मौर्य लगभग ३०० ईसा पूर्व हुये हम अपने इतिहास को नापते चले आये हैं। बड़े-बड़े भारतीय प्राचीन इतिहास के दिग्गज जैसे डा० रमेश चन्द्र मुजमदार व श्री अल्तेकर जी ने, जो भारतीय इतिहास के पुनः लेखन के पक्षधर रहे हैं, स्वतन्त्रता के बाद मौ० आजाद शिक्षा मंत्री की अध्यक्षता में नवम्बर १९५० को काल गणना रखी, वह क्या जोन्स के परिश्रम का पुरस्कार नहीं है :—

इस काल गणना में इतिहास को पुनः लेखन का पक्ष भी सम्मिलित है।

ऋग्वेद की रचना काल	२००० ई० पूर्व से १५०० ई० पूर्व
उपनिषद् काल	८०० ई० पूर्व से ५०० ई० पूर्व
चरक	१०० ई० (A. D.)
ज्योतिष	५०० ई० पूर्व
धर्मसूत्रों का काल	६०० से २०० ई० पूर्व
महाभारत, मनुस्मृति व रामायण का रचना काल	२०० ई० (A. D.)

कुछ ऐसे इतिहासकार भी निकले जो विलियम जोन्स की बात को नहीं मानते और भारत का इतिहास अधिक पुराना बताते हैं इनमें से भी कुछ जोन्स के फन्दे से अपने को मुक्त नहीं कर पाये, और थोड़े से जो इस फन्दे से किसी प्रकार बच गये, वह यह कहते हैं कि विलियम जोन्स को गुप्त वंश का पता नहीं चला नहीं तो वह गुप्त वंश के चन्द्रगुप्त को सण्ड्रोकोट्टस बनाता।

विलियम जोन्स कलकत्ता हाईकोर्ट के जज थे, जज को छोटा-सा भी सन्देह उसे खोज में लगा देता है। नन्द 'एक राजा' १०० वर्ष राज्य करे, कण्व वंश के चार राजा ३४५ वर्ष राज्य करें, उन्होंने निश्चित रूप से दूसरे पुराण देखे होंगे। इस अन्तिम व्याख्यान में वह नन्द व उसके आठ पुत्र होना बोलते हैं। दोनों चन्द्रगुप्त का ज्ञान होते हुये भी उनका उद्देश्य भारतीय इतिहास की प्राचीनता नष्ट करना था, यह चन्द्रगुप्त मौर्य को सण्डोकोट्स बताने से होती थी इसलिये उन्होंने ऐसा किया। वह (Committed) पूर्वाग्रह लिये हुए जज थे। ऐसा जज तथ्यों से आँख मूद लेता है। वही उन्होंने किया। भला विक्रम संवत को विक्रमाजीत की मृत्यु से कैसे जोड़ते हैं। क्या इसका भी कोई प्रमाण है। हम भारतीय अपने सरल व उदार दृष्टि के कारण किसी में बुराई नहीं देख पाते। फिर भला भारत का इतिहास जब प्राचीन नहीं, तो २००० वर्ष पूर्व लिखी संस्कृत पुस्तक कैसे मिली ?

विलियम जोन्स की घोषणा की पुष्टि :—

सर विलियम जोन्स ने यह घोषणा 'रायल ऐशियाटिक सोसाइटी' में की थी, उस समय बंगाल में भी अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीयों का अभाव था, फिर इस सोसाइटी में तो किसी भारतीय के होने की आशा भी नहीं की जा सकती, अतः कोई आलोचना उस समय इन घोषणाओं पर नहीं दिखाई देती, पर विलियम जोन्स का सोसाइटी को वायदा किया हुआ लेख नहीं मिला और उनका देहान्त भी एक वर्ष कुछ महीने पश्चात् हो गया, तब सम्भवतः इस सोसाइटी में जाने वाले कर्नल विलफोर्ड ने इस घोषणा को और पक्का करने के लिये विचार व्यक्त किये।

कर्नल विलफोर्ड :—

इस व्यक्ति की भारतीय इतिहास से रुचि मालूम होती है और सम्भवतः इसने कुछ पुराणों से जानकारी भी प्राप्त की थी। ऐसा मालूम होता है कि वह जानता था कि मगध राज्य की राजधानी गिरिव्रज जिसे राजगृह भी कहते थे, रही थी। (चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में 'पाटलीपुत्र' न राजधानी थी, न उसका विकास हुआ था।) विलफोर्ड के अनुसार गुप्त

वंश के चन्द्रगुप्त ने 'कुसुमपुर' को लेकर पाटलीपुत्र बनाया और अपनी राजधानी बनाई। परन्तु वह भी इस बात में रुचि रखता था कि भारत की प्राचीनता को नष्ट किया जाये अतः वह विचित्र प्रकार से विलियम जोन्स की पुष्टि करता है।

(१) **कर्नल विलफोर्ड**—यह बात मानने को तैयार नहीं कि 'पालीब्रोथ्या' पाटलीपुत्र है। वह 'पालीब्रोथ्या' के सम्बन्ध में बहुत लम्बी बहस या तर्क देकर इस परिणाम पर पहुँचता है 'पालीब्रोथ्या' पाटलीपुत्र नहीं हो सकता। पर वह राजगृह या गिरिव्रज कह नहीं सका।

(२) परन्तु कर्नल विलफोर्ड इस खोज की पुष्टि करता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ही सण्डोकोट्टस है, और जोन्स की प्रमाण देने की जो कमी रह गई थी उसको इन शब्दों में पूर्ण करता है। 'सर विलियम जोन्स ने सोमदेव द्वारा रचित कविता व एक व्रादसी नाटक 'चन्द्र का राजाभिषेक' के द्वारा यह सिद्ध किया है कि अलकजेंडर के काल के इतिहासकारों द्वारा जिस भारतीय राजा का नाम 'सण्ड्रोकोट्टस' लिखा व्रह चन्द्रगुप्त मौर्य है। इस सोमदेव की कविता को तो मैं खोज न पाया, पर मुझे एक और नाटक मिल गया जो 'मुद्रा राक्षस' है जो दो भागों में है पहले भाग में चन्द्रगुप्त का राजाभिषेक है और दूसरे में 'राक्षस कैसे चन्द्रगुप्त का मंत्री बनने को राजी हुआ है। यह नाटक किसी 'अनन्त' का लिखा हुआ है जो गोदावरी तट पर रहता था।'

कर्नल विलफोर्ड ने कौन-सा नाटक देखा, वह उनके 'राक्षस' शब्द से ही मालूम पड़ता है संस्कृत नाटक नहीं था। मुद्राराक्षस का तो केवल एक भाग है और वह चन्द्रगुप्त के राजाभिषेक के पश्चात् की घटना कि राक्षस को कैसे मंत्री बनने पर सहमत किया गया, बताता है। उसका लेखक विशाखदत्त पुत्र महाराज पृथु पौत्र वटेश्वर दत्त है, जो गोदावरी तट पर नहीं रहता था।

अध्याय–६

ग्रीक इतिहासकार और भारत

ग्रीक एवं लैटिन इतिहासकारों द्वारा जो वर्णन प्रस्तुत किया गया है उसको छानबीन निश्चय ही लाभकारी होगी।

अलकजेंडर से पूर्व के :—इतिहासकारों में स्काईलैक्स, मिलीटस, हिचाटियस, हेरोडोटस, और कैटीसियस के नाम आते हैं। इनमें से कोई भी भारत नहीं आया, वह जो कुछ भारत के बारे में जानते थे वह मात्र सिन्धु नदी (इंडस) तक था। वह भी दूसरों से सुना हुआ, किससे यह पता नहीं। उनके लिखे हुए असली लेख भी उपलब्ध नहीं हैं।

अलकजेंडर के समकालीन इतिहासकार :—

अलकजेंडर अपने साथ अपनी विजयगाथा लिखने के लिये कई विद्वान साथ लाया था, उसकी सेना में कुछ ऐसे व्यक्ति भी थे जो शस्त्र के साथ लेखनी का भी उपयोग जानते थे, अतः कुछ लोगों ने अपने संस्मरण लिखे। यह लेखक, वियरकच, ओनिसीक्रीटस, अरसट्रोबूलस, पुटालमी व कैलिसथीन्स आदि थे। ओनिसीक्रीटस ने अलकजेंडर का 'जीवन-वृत्तान्त' भी लिखा था। अरसट्रोबूलस ने 'युद्ध का वृत्तान्त' लिखा था। कैलिसथीन्स अरस्तु का भतीजा था। पुटालमी ने भी युद्ध का वृत्तान्त लिखा है।

अलकजेंडर के भारत आक्रमण के पश्चात् के लखकों में :—तीन नाम आते हैं (१) **मैगस्थानीस** जो सैलूकस का राजदूत बनकर सण्ड्रोकोट्टस के दरबार में 'पालोब्रोथ्या' में रहा। उसने अपने काल का वर्णन एक पुस्तक **'इण्डिका'** में लिखा था। (२) **पेट्रोकिल्स** जिसे 'इसट्रैबो' इतिहास-कार ने सैलूकस का चापलूस व महत्वहीन पुरुष व लेखक लिखा है (३)

डीयाकस था, जिसके बारे में "इसट्रैबो" इतिहासकार का कहना है वह भी सैलूकस का राजदूत बनकर पालीब्रोथ्या में सण्ड्रोक्रोट्टस के उत्तराधिकारी अमित्राचेडस के दरबार में रहा था।

अलकजेंडर व सैलूकस का काल :—

पाश्चात्य इतिहासकार इस पर पूर्ण सहमत हैं कि अलकजेंण्डर ने भारत पर ३२७ ईसा पूर्व आक्रमण किया। श्री एम० पी० श्रीवास्तव द्वारा लिखित 'प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला एवं दर्शन' पुस्तक के पृष्ठ ११६ के अनुसार अलकजेंडर (सिकन्दर) की मृत्यु ३२३ ईसा० पूर्व हुई। सैलूकस का काल उसके बाद पड़ता है।

सैलूकस के बाद के इतिहासकार :—

(१) इसट्रैबो—यह व्यक्ति ६३ ईसा पूर्व अमासिया में जन्मा था और उसने भूगोल पर १७ भाग की पुस्तक लिखी, १५ वें भाग में भारत व फारस का कुछ वर्णन है।

(२) डियोडोरस—यह व्यक्ति इटली के नीचे स्थित सिसली टापू का था। इसका काल भी ईसा० पूर्व की पहिली शताब्दी है। इसमें 'बेबीलोथिका हिसटारिका' नाम की ४० अध्यायों की पुस्तक लिखी, इनमें कुछ अध्याय अब मिलते हैं जिनमें अलकजेंडर के आक्रमण का वर्णन है। यह स्वयं भारत नहीं आये थे।

(३) जसटिन—इसका काल ठीक पता नहीं, परन्तु यह रोम के थे, और इनकी पुस्तक 'हिस्टारीकम फिलीपीकेरम' में अलकजेंडर के आक्रमण का कुछ वर्णन है।

(४) पिलनी— यह लेखक भी रोमन हैं और ईसा के बाद पहिली शताब्दी का है। इसने 'नेचरालिस हिस्टोरिया' नाम की पुस्तक लिखी और मैगस्थानीस के कुछ उद्धरण दिये हैं जिनका कोई महत्व नहीं है।

(५) प्लूटार्क—यह (४६ ई० से १०० ई० तक) प्रथम ईसा शताब्दी का है। इसने इतिहास के टुकड़ों को आधार मानकर "पैरल लाइव्ज" या यह कहो 'समकालीन व्यक्तियों के जीवन' नाम की पुस्तक लिखी, जिसमें अलकजेंडर भी है इसने पुटालमी (जो अलकजेंडर के साथ गया था) के लिखे भूगोल ग्रन्थ को 'अस्पष्ट चित्र भारत का' बताया है। यह लेखक मिश्र व इटली में घूमा था।

(६) आरइयन—(८६ ई० से १६० ई० तक) यह ईसा की दूसरी शताब्दी का इतिहासकार है। इसने मैगस्थानीस और इरेटोथीज के उद्धरणों के आधार पर 'अनाबिसिस अलकजेंडर' नाम की पुस्तक लिखी, जिसमें भारत का वर्णन है।

(७) करटीअस—यह भी आरइयन का समकालीन है, और इसने भी अलकजेंडर के युद्ध का वर्णन लिखा है।

(८) फिलासट्रेटस—यह ईसा की तीसरी शताब्दी का इतिहासकार है। इसने २१७ ई० में 'अपोलिनियस' नामक यात्री का जीवन लिखा जिसके बारे में कहा जाता है कि वह फारस, इटली, मिश्र व भारत गया पर लेखकों ने इसे प्रमाणिक नहीं माना है।

इस प्रकार से यह आठ लेखक या इतिहासकार अलकजेंडर के काल से आगे (३२७ ई० पूर्व से २१७ ई० तक) पाँच शताब्दी तक मिलते हैं। इन सभी आठ लेखकों का अलकजेंडर के साथ गये लोगों के विवरण, लेख या पुस्तक और अलकजेंडर के बाद के लेखक जैसे मैगस्थानीज की 'इण्डिका' मूल (Original) रूप में नहीं मिली। केवल उनके अस्त-व्यस्त उद्धरण या अंश मिले, जिनके आधार पर इन लेखकों ने अपनी पुस्तकें लिखीं। यही प्राचीन (Classical Notes) इतिहास है जो १७८३ ई० में विलियम जोन्स को उपलब्ध हुआ होगा। उस समय तक इन सब इतिहासकारों के लेखों की छान-बीनकर जो पुस्तकें आज उपलब्ध हैं नहीं बनी थीं।

सबसे पहले जर्मन विद्वान 'शुयनबैक' ने १८४६ ई० में इन 'प्राचीन ऐतिहासिक वर्णनों (Classical Accounts) को व्यवस्थित कर एक पुस्तक लिखी जिसका नाम मैगस्थानीज की पुस्तक के नाम पर 'इंडिका' रखा। मैक्समूलर के काल में यह पुस्तक और उपलब्ध हो गई थी।

इसके बाद इतिहासकार मैककिरनडिल ने उस समय उपलब्ध सामग्री के आधार पर दो पुस्तकें 'प्राचीन भारतमैगस्थानीज व आरइयन के वर्णन के अनुसर' सन् १८७७ ई० में तथा दूसरी 'अलकजेंडर महान का भारत पर आक्रमण' सन् १८९३ ई० में लिखीं व छपीं।

अन्त में डा० रमेशचन्द्र मजुमदार ने जो ढाका विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर व इतिहास विभाग के अध्यक्ष थे इसी विषय पर 'भारत का प्राचीन इतिहास 'Classical Accounts of India' नाम से एक पुस्तक १९६० में लिखी। इस पुस्तक में उन्होंने इन आठ प्राचीन इतिहास (Classical Notes) के लेखकों के वर्णनों में प्रचुर मात्रा में विभिन्नता अथवा विरोधी चित्र खींचा जाना दिखाया है, इसका स्पष्ट अर्थ है कि अलकजेंडर के साथ जो लेखक गये थे, उनके विवरण भिन्न-भिन्न और एक दूसरे के विरोधी थे। जैसे अरसट्रोबूलस और पुटालमी अलकजेंडर के साथ रण-स्थल पर मौजूद थे आरइयन ने दोनों के विवरण, बिना समालोचना के दिये हैं। इसी प्रकार झेलम (हिडअपिस) नदी को अलकजेंडर द्वारा पार करने पर भी करटीअस इतिहासकार कहता है कि एक स्थान पर पार की गई, आरइयन इतिहासकार दो स्थानों पर पार करना बताता है, प्लिूटार्क इतिहासकार एक तीसरी बात कहता है कि अलकजेंडर नदी को पार करते समय पहिले नदी के बीच में स्थित टापू पर पहुँचा, फिर दुबारा में दूसरे किनारे तक। नदी पार करने के बाद क्या हुआ उस विवरण में तो बहुत अन्तर है। अरस्तटोबूलसजो अलकजेंडर के साथ था वह कहता है कि अलकजेंडर ने नदी पार करके पोरसके पुत्र को बुरी तरह हरा दिया उसके पास ६० रथथे। पुटालमी जो अलकजेंडर का दूसरा साथी था कहता है कि पोरस के पुत्र के साथ २००० घुड़सवार और १२० रथ थे, परन्तु अलकजेंडर के पहले ही आक्रमण पर उन्होंने रास्ता दे दिया, उसमें ४०० घुड़सवार व पोरस का पुत्र मारा गया। पर करटीयस इतिहासकार लिखता है कि

पोरस का पुत्र नहीं भाई लड़ने आया था और उसके साथ ४००० घुड़सवार और १०० रथ थे और युद्ध इतना भयंकर हुआ कि कहा नहीं जा सकता कि जीत हार किधर रही। इसी प्रकार के विरोधी वर्णन निर्णायक अगले युद्ध के बारे में हैं।

अतः मजुमदार जी का मत है कि "इंडिका" की सत्यता सन्देह जनक है और उसका फिर आंकलन होना चाहिये।

इन सब विवरणों से तथा जर्मन विद्वान की लिखी 'इंडिका' व मैक किरन डिल द्वारा लिखी दो पुस्तकें व डा० मजुमदार द्वारा पुस्तक से यह जानकारी मिलती है:—

(१) श्री मजुमदार की पुस्तक से :—

(i) पृष्ठ १७२ पर लिखते हैं कि अलकजेंडर ने फीगस द्वारा, आक्रमण से पहले, यह पता लगवा लिया था कि इन्डस नदी के पार करने पर रेगिस्तान पड़ता है जो १२ दिन में पार किया जा सकेगा, फिर गंगा नदी है जो ३२ सटेडिया चौड़ी है, और भारतीय नदियों में सबसे गहरी है और उसके उपरान्त परसोई व गंगारिदायी जातियां रहती हैं जिनका राजा यक्सन ड्रामस (Xandrammes) था जिसकी सेना में २०,००० घुड़-सवार, २ लाख सैनिक, २००० रथ और ४००० युद्ध के लिये प्रशिक्षित हाथी हैं।

(ii) पृष्ठ १२८ पर लिखा है कि राजा यक्सन ड्रामस(Xandrammes) को अग्रमस (Agrammes) भी कहते हैं।

(२) मैक किरनडिल की पुस्तक "प्राचीन भारत मेगस्थानीज व आरयन के वर्णन" के अनुसार :—

(i) पृष्ठ २०९-२१० पर लिखा है कि 'पालीब्रोथ्या' दो नदियों के संगम पर स्थित था जो इरोनो-बोअस व गंगा थी।

(ii) पृष्ठ १३० पर लिखा है कि 'पालीब्रोथ्या' नगर गंगा व जमानस के संगम से ४२५ मील पर है और गंगा के समुद्र में मिलने से ७३८ मील पर है।

(iii) पृष्ठ ६६ पर लिखा है कि पालीबोथ्या जिस क्षेत्र में स्थित है वहाँ के लोग भारत में सबसे अधिक शौर्यवान समझे जाते हैं और 'प्राज्ञी' कहलाते हैं। राजा अपने वंश के नाम के अतिरिक्त पालीब्रोथ्या' सम्बन्धी उपाधि भी लगाता है, जैसा कि 'सण्डोकोट्टस' करता है जिसके दरबार में मैगस्थानीज को राजदूत बनाकर भेजा गया था।

(iv) पृष्ठ ४ व १२ पर लिखा है कि 'संड्रोकोट्टस' के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह भारतीय नरेशों में सबसे बड़ा सम्राट था और वह 'प्रासियों' का राजा है जिनकी राजधानी 'पालीब्रोथ्या' थी।

(v) पृष्ठ ८ पर लिखा है कि 'संड्रोक्रीट्टस' ने एकबहुतबड़ी सेना की सहायता से कुल भारत विजय कर लिया था।

(vi) पृष्ठ ७ पर लिखा है कि मैगस्थानीज व और डीयाकस को सैलूकस निकटोर ने राजदूत बनाकर 'पालीब्रोथ्या' भेजे थे। पहिला संड्रोकोट्टस के दरबार में और दूसरा उसके उत्तराधिकारी पुत्र अमित्रो-केडस के दरबार में जो संड्रोसिपटस भी कहलाता था।

(vii) पृष्ठ ८ पर यह भी लिखा है कि सैलूकस निकटोर ने अपनी पुत्री 'संड्राकोट्टस' को विवाह में दी थी।

(३) वी० ऐ० स्मिथ ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि संड्रोकोट्टस पिछले राजा को मारकर राजा बना।

विलियम जोन्स ने जो कुछ प्राचीन लेखकों (Classical Accounts) से प्राप्त किया होगा, वह ऊपर लिखी जानकारी से अधिक नहीं हो सकती, अभी हम उसकी विवेचना नहीं कर रहे हैं।

* * *

अध्याय–७ (क)

(जोन्स के विचारों की मैक्समूलर द्वारा पुष्टि व हिन्दू धर्म पर प्रहार)

अब हम संक्षेप में उस काल खण्ड पर दृष्टि डालें जब (१७९३-१९०४) भारतीय इतिहास को नये परिपेक्ष्य में अंग्रेजों द्वारा ढाला जा रहा था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा सन् १७७३ ई० में बंगाल में अंग्रेजी राज्य स्थापित होने पर ईसाई मिशनरी भी जी-जान से प्रचार में लग गये। शिक्षा के माध्यम से धर्म प्रचार का कार्य आगे बढ़ाया। विद्यालय खोले जाने लगे। उस समय उच्च-जातियों को विशेष रूप से ब्राह्मण वर्ग को ईसाई बनाना ध्येय था।

अंग्रेज विचार करने लगे कि पूरे भारत पर अंग्रेजी राज्य बढ़ाया जा सकता है, पर इतने विशाल क्षेत्र पर थोड़े से अंग्रेजों द्वारा कैसे शासन स्थिर रखा जा सकता हैं पूरे भारत को मुसलिम शासक ७०० वर्ष में भी मुसलमान न बना सके, अतः ईसाई बनाना भी सम्भव नहीं है। पर शासन तब ही जम सकता है जब भारतीयों के हृदय में यह स्थापित कर दिया जाये कि अंग्रेज-जाति हमसे उच्च है और अंग्रेज शासन देशी शासन से अधिक सुखप्रद है।

एतदर्थ दो दिशाओं में कार्य होने लगा। एक ओर हिन्दू धर्म, संस्कृति, उसकी प्राचीनता व उच्चता पर प्रहार और दूसरी ओर कूटनीति द्वारा राज्य के क्षेत्र को बढ़ाना।

भारत का दुर्भाग्य "१७६१ ई० के पानीपत के युद्ध के बाद मराठा शक्ति के ह्रास के साथ" प्रारम्भ हो चुका था। मुगल बादशाह जो

मराठों से पेंशन पाता था अब अंग्रेजों के चंगुल में फँस गया था। १८३९ में राणा रंजीत सिंह का देहान्त हुआ और आपसी कलह के फलस्वरूप १८४९ ई० में पूरा पंजाब अंग्रेजों के हाथ आ गया। धीरे-धीरे रियासतें समाप्त की जाने लगीं, जिसके कारण १८५७ ई० में अंग्रेजी राज्य को उखाड़ने का प्रयत्न किया गया परन्तु अंग्रेज अपनी कूटनीति से बच गया और १८५८ ई० में अंग्रेजी शासन सीधा विक्टोरिया महारानी के द्वारा होने लगा। अतः १९०४ तक पूरे देश पर प्रभावशाली अंग्रेजी राज्य की स्थापना हो चुकी थी और लोग अंग्रेजी शासन जो पिछले मुस्लिम शासन की अराजकता के बाद आया था, को एक ईश्वरीय वरदान के रूप में मानते थे।

परन्तु अंग्रेज जानते थे कि शासन को सुदृढ़ करने के लिये भारतीयों के मन में यह भी स्थापित करना आवश्यक है कि अंग्रेजों का धर्म, संस्कृति, ज्ञान भारतीयों से उच्च है और भारत तो सदा आक्रमणकारियों द्वारा ही शासित रहा है, उसका न निजी कोई इतिहास है, न राष्ट्रीयता। इस उद्देश्य को लेकर भी अंग्रेजों के प्रयास चलते रहे।

विलियम जोन्स का फरवरी १७९३ ई० यह प्रतिपादित करना कि 'संड्रोकोट्टस' चन्द्रगुप्त मौर्य है राम व मनु भी १३००-४४०० ईसा० पूर्व से अधिक पहले नहीं हुये हैं, भारतीय समाज की प्राचीनता पर कुठाराघात था यह घोषणा केवल ऐतिहासिक खोज ही न रही बल्कि अंग्रेजी-शिक्षा में शामिल कर ली गई। सन् १८०० ई० में पहिला कालिज 'फोर्ट विलियम कालिज' कलकत्ता में स्थापित हुआ और ईसाई-पादरियों का हिन्दू धर्म, हिन्दू रीति-रिवाज, व हिन्दू देवताओं पर भयानक आक्षेप बढ़ता गया, परन्तु हिन्दू समाज में कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। तब अंग्रेजों ने विचार किया कि हिन्दू समाज की बुराइयों पर कुठाराघात से इस पर कोई प्रभाव न होगा, वह उनको सुधार लेगा अतः उसके मूल स्त्रोत 'वेदों' पर चोट की जाये।

सन् १८११ ई० में ऑक्स फोर्ड विश्वविद्यालय में वोडन के दान से संस्कृत विभाग खोला गया जिसका उद्देश्य भारतीयों को ईसाई मत में लाना था यह संस्कृत विद्वान 'वोडन विद्वान' के नाम से प्रसिद्ध है। उस

काल में विलसन व सर मोनियर विलियम ऐसे ही विद्वान थे। मैकाले साहिब ने "जिन्होंने भारत में अंग्रेजी शिक्षा प्रारम्भ कराई", जर्मन विद्वान मैक्समूलर को ऑक्स-फोर्ड विश्वविद्यालय में स्थान दिलाया, जिससे वह हिन्दू शास्त्रों व वेदों का विकृत अर्थ कर सकें। यह मैक्समूलर भी 'बोडन प्रोफेसर' बनने के प्रत्याशी थे, पर विलियम चुन लिये गये। तब भी मैक्स-मूलर ने 'वेदों' का विकृत अर्थ कर पाश्चात्य जगत में बहुत नाम कमाया और संस्कृत साहित्य पर दिग्गज विद्वान माने जाने लगे। इनके पत्र हमने प्रस्तावना में दिये हैं कि वह अपने मतानुसार वेद का भण्डाफोड़ कर ईसाई धर्म की नींव डाल रहे थे।

सन् १८१४ ई० में पादरियों का प्रचार मैक्समूलर के वेद के अर्थों को लेकर और भयानक हो गया था वह हिन्दू धर्म की विकृत रीति-रिवाजों पर ही आक्षेप नहीं कर रहे थे बल्कि उसके मूल वेदों पर भी आक्रमण कर रहे थे जिसके फलस्वरूप बंगाल में ब्राह्मण-पुत्र ईसाई बनते जा रहे थे।

उस समय भारत का एक नवयुवक, जिसे आज हम 'राजा राम मोहन राय' के नाम से जानते हैं एक अंग्रेज कलक्टर के आधीन नौकरी कर रहा था। उसने हिन्दू-धर्म पर आक्रमण देख सन् १८१४ में सरकारी नौकरी छोड़ दी और धर्म प्रचार में लग गया।

इस नवयुवक का जन्म १७७२ ई० में एक धनी ब्राह्मण कुल में हुआ था। बाल्यकाल में उन्होंने पटना में अरबी व फारसी पढ़ी, उसके पश्चात् काशी आकर संस्कृत व वेदान्त का अध्ययन किया वह ईश्वरवादी परन्तु मूर्ति पूजा के विरोधी हो गये। अरबी में उन्होंने कुरान पढ़कर एक ग्रन्थ लिखा जिसके फलस्वरूप घर से निकाल दिये गये। उन्होंने कलकत्ता आकर अंग्रेजो, लेटिन व हिब्रू भाषायें पढ़ीं और बाइविल का अध्ययन किया। वह पहिले व्यक्ति थे जिन्होंने विभिन्न धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन व समालोचना की। सन् १८०३ में उनके पिता का देहान्त हो गया और वह फिर परिवार में जा मिले। राजा राममोहन राय ने सन् १८१४ तक अंग्रेजों की नौकरी की।

पादरियों के प्रचार के विरुद्ध राममोहन राय ने उपनिषदों का प्रचार प्रारम्भ किया तथा मूर्ति पूजा के विरोध के साथ, हिन्दू समाज में प्रचलित कुरीतियों व कुसंस्कारों के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया। ईसाई धर्म की उन्होंने अति तीव्र आलोचना की तथा वेदान्त का एक ईश्वरवाद ऐसे युक्तपूर्वक रखा उस समय के पादरी मेर्समेन, केरी आदि जो वेदों पर आक्षेप कर रहे थे घबड़ा उठे। ईसाई धर्म के त्रिमूर्ति—ईश्वर, ईश्वर का पुत्र ईसा व तीसरा शैतान' इस त्रिवाद पर इतना घोर आक्रमण किया कि यह विख्यात वेदान्त-युद्ध (एक ईश्वरवाद) एक ऐतिहासिक घटना हो गई, और विलियम आडम नाम का पादरी ईसाई त्रिवाद को छोड़कर हिन्दू हो गया।

राजा राममोहन राय ने धर्म प्रचार के लिये, 'आत्मीय सभा' की स्थापना की। और हिन्दू कुरीतियों के विरुद्ध लड़ते हुए सन् १७२९ में सती प्रथा के विरुद्ध कानून बनवाया और फिर गंगासागर में सन्तान फेंकने को भी कानून द्वारा रुकवाया।

बंगालियों विशेषकर ब्राह्मणों को ईसाई बनाने के विरुद्ध राजा राममोहन राय अकेले ही खड़े हुए। उस समय हिन्दू समाज ने भी उनका साथ न देकर, उनके सुधारवादी, मूर्ति पूजा विरोधी होने के कारण, उनका विरोध ही किया। पर राजा राममोहन राय ने एक ही साथ अपने लोगों से तथा विदेशी पादरियों से शास्त्र व युक्ति का प्रयोग कर नवयुवकों को ईसाई बनने से रोका। उन्हें कई कार्यों के लिए विलायत जाना पड़ा। वहीं २७ सितम्बर १८३३ ई० में उनका देहान्त हो गया।

उधर राजा राममोहन राय धर्म प्रचार से अधिक सुधार आन्दोलन में लग गये थे कि १८३० ई० में पादरी अलकजेंडर डफ़ कलकत्ता आये और राजा राममोहन राय इङ्गलैंड में जाकर १८३३ में संसार से विदा हो गये। उन्होंने किसी नवीन धर्म सम्प्रदाय की स्थापना नहीं की थी वह तो केवल प्राचीन वैदिक-धर्म शुद्ध रूप में लाना चाहते थे। इस प्रकार खाली स्थान देख पादरी डफ ने शिक्षित बंगाली नवयुवकों को ईसाई बनाने का घोर प्रयत्न किया और उसकी चेष्टा से महेन्द्र घोष, कृष्णमोहन बनर्जी, ज्ञानेन्द्र

मोहन ठाकुर आदि ईसाई बन गये। और उनका अनुकरण कर दूसरे भी ईसाई बन रहे थे।

उस समय १८४३ ई० में (जब मूलशंकर जो बाद को महर्षि दयानन्द सरस्वती बने, अभी १८ वीं वर्ष में पदार्पण कर रहे थे और घर छोड़ने की सोच रहे थे) महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने सात पौष को २० मित्रों के साथ 'ब्रह्म-समाज' की स्थापना की।

महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, प्रिन्स द्वारकानाथ के पुत्र थे और धनी उच्च समाज में सम्मानित थे इस कारण शिक्षित समाज उनके प्रति आकर्षित हुआ। वह अंग्रेजी के विद्वान व संस्कृत का भी कुछ ज्ञान रखते थे। इन्हीं के पौत्र रविन्द्रनाथ ठाकुर हुये।

महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने राजा राममोहन राय के युक्तिवाद को अधिक महत्व दिया, पर शास्त्रों व वेदों की प्रामाणिकता को पूर्ण रूप से त्यागा नहीं और न गुरु के स्थान की अवहेलना की परन्तु अपने मित्रगण अक्षय कुमार व राजनरायण के परामर्श से १८५० ई० में वेदों की अपौरुषेयता अभ्रान्तता का सिद्धान्त बिल्कुल त्याग दिया। इस प्रकार 'ब्रह्म-समाज' की लहर ने बंगाली नवयुवकों को ईसाई बनने के रोकने में सफलता प्राप्त की।

इधर १८५७ ई० का स्वतन्त्रता युद्ध हुआ और सन् १८५८ ई० में कम्पनी राज्य समाप्त हो महारानी विक्टोरिया का सीधा शासन प्रारम्भ हुआ, साथ ही धर्म में हस्तक्षेप न करने की नीति की घोषणा की गई, और अंग्रेज पादरियों का आना कम हुआ। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर हिमालय तप को चले गये।

सन् १८५९ में महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पुत्र सत्येन्द्र ठाकुर अपने एक सहपाठी केशवचन्द्र सेन को ब्रह्म-समाज में लाये। परन्तु यह नवयुवक केशव न तो राजा राममोहन राय व महर्षि देवेन्द्रनाथ के समान उच्च-कुल-गौरव व धन-गौरव लेकर आये थे और न उन्हें संस्कृत का कुछ भी ज्ञान था। वह वेद, वेदान्त, शास्त्रों से बिल्कुल अपरिचित, पाश्चात्य शिक्षा

सभ्यता तथा ईसाई धर्म की भाव धारा में बहे हुये थे। लेकिन उनमें असाधारण भाषण-पटुता थी और नवीन शिक्षा में पढ़े विद्यार्थी उनसे बहुत प्रभावित हुये। उन्होंने ब्रह्म समाज को पूर्ण रूप से हिन्दू धारा से काटकर ईसाई धारा में मिलाने का यत्न किया।

अभी ऋषि दयानन्द का नाम १८५९ में भारत के इतिहास पटल पर नहीं आया था, परन्तु हर तरफ सुधारवाद चल रहा था। देवी, देवताओं की मान्यता के स्थान पर एक ईश्वरवाद लेकर हिन्दू धर्म ईसाई धर्म का मुकाबला कर रहा था। पुराणों का पठन-पाठन बन्द सा हो गया था। उनमें बहुदेवोपासना के कारण, उनमें छिपे ऐतिहासिक सत्य को भी लोग भूल गये थे।

इस समय १८५९ ई० में मैक्समूलर ने अपनी ख्याति का लाभ उठाते हुए दो महत्वपूर्ण घोषणायें कीं, जिनका उद्देश्य भारत की सांस्कृतिक व ऐतिहासिक प्राचीनता को नष्ट कर, अंग्रेजी साम्राज्य को मजबूत बनाना था :—

(१) मैक्समूलर का कहना था कि 'आर्य' एक जाति थी जिसके लोगों का ऊँचा कद, गोरा रंग, उठी हुई नाक होती थी। वह मध्य एशिया के रहने वाले थे. और वहाँ से चारों ओर फैले। भारत पर आर्य जाति की एक शाखा का आक्रमण १५०० ईसा० पूर्व हुआ, और उन्होंने यहाँ के प्राचीन रहने वालों को जंगलों में या दक्षिण में मारकर भगा दिया और उन्हें या तो मार डाला या दास बना लिया। यह मूल निवासी काले रंग के, छोटे कद के तथा चपटी नाक वाले थे जिनमें द्रविड़ भी हैं।

मैक्समूलर ने वेदों का रचना काल १५०० ईसा० पूर्व से १२०० ईसा० पूर्व तक बताया।

मैक्समूलर की इस घोषणा का कोई प्रमाण, ऐतिहासिक खोज, खुदाई, ताम्रपत्र, या ग्रन्थ न था। यह केवल कल्पना मात्र थी। इसका सम्बन्ध इस बात से है कि संसार की सभी भाषायें संस्कृत से निकली हैं। मूल भाषा संस्कृत थी। अठारहवीं सदी में जब यूरोपियन विद्वानों ने भारत

के सम्पर्क में आकर संस्कृत भाषा का अध्ययन शुरू किया तो उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि संस्कृत की लेटिन व ग्रीक भाषाओं से बहुत समता है। यह समता केवल शब्द कोष से ही नहीं है, अपितु व्याकरण में भी है यह प्रकट करने वाला प्रथम विद्वान फ्रांस का केअरदू था। केअरदू फ्रेंच थे और इसी कारण से ब्रिटिश विद्वानों ने इस खोज पर ध्यान नहीं दिया। सर विलियम जोन्स ने इसी तथ्य को सन् १७८६ ई० में पुनः प्रकट किया कि यूरोप की ग्रीक, लेटिन, जर्मन और अन्य केल्टिक भाषायें संस्कृत से बहुत मिलती हैं और एक ही परिवार की हैं। जोन्स को इस स्थापना से यूरोप के विद्वानों में एक तहलका मच गया और हीगल ने तो यहाँ तक लिख दिया, कि जोन्स का यह आविष्कार एक नई दुनिया के आविष्कार के समान है।

पर मैक्समूलर ने बजाय इसके कि वह भारत की महत्ता, प्राचीनता को स्वीकार करता कि उसने संसार को ज्ञान, भाषा, व उच्च विचार दिये और युरोप आदि सब उसके ऋणी हैं, उसने 'आर्य-जाति' को जन्म दे दिया जो आक्रान्ता के रूप में भारत आई, और भारत के निवासियों को विजेता व विजित दो भागों में बाँट दिया, उत्तर भारत, दक्षिण भारत, आर्य व द्रविड़। और उनका इतिहास १५०० ईसा० पूर्व तक सीमित कर दिया।

(२) मैक्समूलर ने सर विलियम जोन्स की पहली खोज का जो राजनीतिक उपयोग किया, वह पहले लिख चुके हैं दूसरा काम मैक्समूलर ने यह किया कि सन् १८५९ ई० में उन्होंने जोन्स की इस खोज पर कि ग्रीक इतिहास में जो 'संड्रोकोट्टस' नाम का राजा या व्यक्ति दिया था वह कोई अन्य नहीं "चन्द्रगुप्त मौर्य" है पर अपनी मुहर लगाकर भारतीय इतिहास की **आधार-शिला** पक्की कर दी।

मैक्समूलर से पहले एच० एच० विलसन जो एक 'बोडन प्रोफेसर' रह चुके थे सर विलियम जोन्स की इस खोज के बारे में इस अशुद्धि को इंगित कर चुके थे कि सर विलियम जोन्स ने 'सोमदेव रचित अति सुन्दर कविता का जो प्रमाण दिया वह कोई कविता नहीं है निसन्देह उन्होंने

कहानियों के संग्रह जिसको 'सोम भट्ट' ने 'वृहद कथा' के नाम से किया है उसी को कविता समझ लिया है और कर्नल विलफोर्ड के समर्थन को भी यह कहकर खण्डन किया था 'कि कर्नल विलफोर्ड ने 'संड्रोकोट्टस' के युवावस्था के जिन साहसिक कार्यों को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर लिखा है वह 'जस्टिन' द्वारा दिये वृत्तान्तों का ही पुनः लेखन है, परन्तु भारतीय इतिहासकारों ने चन्द्रगुप्त मौर्य का जो वर्णन दिया है उससे नहीं मिलता। विलसन ने कर्नल विलफोर्ड पर यह भी आक्षेप किया कि उन्होंने 'मुद्रा राक्षस' के बारे में जो लिखा है उससे यह सिद्ध होता है कि उन्होंने 'मुद्रा-राक्षस' पुस्तक ही नहीं देखी, नहीं तो ऐसी बातें न लिखते जो उसमें नहीं दी हैं।

इस प्रकार का विलसन जैसे विद्वान के खण्डन के होते हुए भी मैक्समूलर ने सर विलियम जोन्स की इस खोज का समर्थन इन शब्दों में किया 'कि भारत के राजाओं के नाम व वंशावलियां एक सी ही हैं तथा वह अनिश्चित व भ्रमपूर्ण हैं' निसन्देह मैक्समूलर के दिमाग में 'संड्रोकोट्टस, संड्रोसिपटस व अनेक दूसरे नाम आ रहे होंगे', परन्तु उन सब सन्देहों को दबा दिया और अधिक खोज न करते हुये, सब दोष भारतीयों पर तथा उनकी ऐतिहासिक पद्धति पर मढ़ दिया। मैक्समूलर लिखता है 'भारतीय काल गणना की हर बात चन्द्रगुप्त मौर्य की तिथि पर आधारित है। चन्द्रगुप्त अशोक के पितामह थे और सैल्यूकस निकटोर के समकालीन थे। अब यदि चीनी गणना मानी जाये तो अशोक का काल, थोड़े से मतभेदों को भुलाकर, ८५० ईसा पूर्व पड़ता है। और यदि लंका की काल गणना पर चला जाये तो ३१६ ईसा पूर्व पड़ता है। यह दोनों ही काल-गणनायें यूनानी कालगणना से मेल नहीं खातीं। इन दोनों को निरर्थक मानकर छोड़ देना होगा। इसलिये एक ही विधि से भारतीय व यूनानी इतिहासों का सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है, और इस प्रकार भारतीय काल गणना को वास्तविक स्वरूप दिया जा सकता है। ब्राह्मण व बौद्ध साहित्य में कहीं पर भी अलकजेंडर की विजय का उल्लेख नहीं आता और न ही ऐसी घटनायें मिलती हैं जो दोनों में कही गई हों तब भी एक नाम सौभाग्य वश (Classical Account) प्राचीन साहित्य में ऐसा मिलता है जो दोनों इतिहासों में मेल करा सकता है यह नाम संड्रोकोट्टस या संड्रोसिपटस है

जिसका संस्कृत नाम चन्द्रगुप्त है। हमें जस्टिन, आरइन आदि के प्राचीन लेखों से यह जानकारी मिलती है कि अलकजेंडर के काल में गंगा के पार एक शक्तिशाली राजा एक्सद्रामस (Xandrammas) राज्य करता था और अलकजेंडर के आक्रमण के थोड़े दिनों वाद संडोकोट्स या संड्रोसिपटस ने नये राज्य को जन्म दिया। इन वर्णनों से जो प्राचीन लेखकों ने दिये यह बिना संदेह निश्चित किया जा सकता है कि कौन व्यक्ति थे। वैसे तो भारतीय इतिहासकार, सत्य तो यह है, का लेखन भ्रमपूर्ण व अत्युक्ति होता है कि उनके सभी राजा एक से अच्छे या बुरे मालूम होते हैं, तो भी एक ऐसे 'पारसी' राजा का वर्णन जिसने दूसरे राजा को मारकर राज्य छीना हो और पाटलीपुत्र में रहता हो वह ग्रीक इतिहासकारों के अनुसार संड्रोकोट्स या संड्रोसिपटस था और भारतीय इतिहास का चन्द्रगुप्त के नाम से था, व इन संड्रोकोट्स या संड्रोसिपटस के नामों के स्वर में इतनी समानता है कि सर विलियम जोन्स ने यह समानता ठीक ही प्रगट की है। यद्यपि एम० ट्रोयर जैसे विद्वान ने अपने 'राजतंरगनी' के अनुवाद के प्राक्कथन में इस मत का विरोध किया है, परन्तु मैं देखूंगा कि चन्द्रगुप्त और संड्रोकोट्स एक ही व्यक्ति थे इसके इतने प्रमाण इकट्ठे कर दूंगा कि कोई संदेह न रहे।"

मैक्समूलर का जो आक्रमण भारतीय धर्म (वेदों पर) संस्कृति व इतिहास पर चल रहा था, उस सबका विरोध उसी समय से होता चला आया है।

भारतीय धर्म तथा वेदों पर जो उसका प्रहार था, कि वेद संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक तो है, पर वह गड़रियों के गीत हैं और आदि-मनुष्य के अपरिपक्व मस्तिष्क ही कल्पनायें हैं। यह उसका प्रयास सफल न हो सका और उसका यह अनुमान कि भारत का प्राचीन धर्म मरणासन्न है और ईसाई धर्म उसका स्थान लेगा, सत्य सिद्ध न हुआ बंगाल के महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर सन् १८६३ ई० में हिमालय से लौटे। आने पर उन्होंने 'केशव' को अपना पुत्र तथा शिष्य स्वीकार किया और 'ब्रह्मानन्द' नाम दिया, पर थोड़े दिनों में अर्थात् अन्तिम १८६६ ई० में ब्रह्म समाज टूट गया। महर्षि देवेन्द्र ठाकुर ने केशव के ईसाईपन से क्रुद्ध हो अपना विरोध

प्रगट कर अपने समाज का नाम 'आदि ब्रह्म समाज' रख लिया और केशव ने अलग समाज बना लिया।

उत्तर भारत में महर्षि दयानन्द सरस्वती वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे थे और वेदों का भाष्य कर उनकी महत्ता प्रगट कर रहे थे। उन्होंने मैक्समूलर इत्यादि पाश्चात लेखकों को चुनौती दी थी कि वह आये और अपने भाष्यों पर वाद-विवाद कर लें। १८७२ ई० में महर्षि दयानन्द सरस्वती कलकत्ता पहुँचे और महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर से मिले और केशव से भी भेंट हुई। सन् १८७५ ई० में उन्होंने बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। उनके ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में ईसाई धर्म व मुसलिम मजहब पर दो अध्याय में उन धर्मों की कड़ी समालोचना की है तथा उनमें स्थापित तर्क विहीन बातों पर कड़ा प्रहार किया है।

बंगाल में भी १८७५ ई० में केशव प्रथम बार श्री रामकृष्ण से मिले। उन्हें देखते ही वह न मालूम कैसे श्रद्धा सम्पन्न हो गये और उनके धर्म जीवन में विचित्र परिवर्तन आ गया। ईसाई धर्म का गुणगान करने वाले केशव भारत की वैराग्य मूलक साधनाओं की ओर आकृष्ट हुये। उन्होंने शारीरिक कठोरता व स्वपाक भोजन आदि आरम्भ कर दिया और वह अपने भाषणों में देवी देवताओं की आध्यात्मिक और रूपक व्याख्या करने लगे।

फिर काल आता है स्वामी विवेकानन्द का। सन् १८८३ ई० दीपावली के दिन महर्षि दयानन्द सरस्वती इस संसार को छोड़कर चले गये, पर आर्य समाज ने उनका कार्य जारी रक्खा और पादरियों व मुल्लाओं को शास्त्रार्थों द्वारा ललकार कर वैदिक धर्म पताका देश के कोने-कोने में फैलाई और भारत में ईसाई धर्म का प्रचार व महत्ता पर रोक लगा दी। पर विवेकानन्द ने विदेशों में, उन्ही के घर जाकर, हिन्दू धर्म की प्रधानता उन्हीं से स्वीकार करा ली। ११ सितम्बर १८९३ ई० को अमेरिका के शिकांगो नगर में सर्व धर्म सम्मेलन में जब उन्होंने वेद मन्त्रों की धुन के बीच मानव धर्म की कल्पना रखी, जो मनुष्य को विभाजित नहीं करता, और जिसमें सभी पंथों को स्थान प्राप्त है, तो उन्होंने अपने एक ही भाषण

से पश्चिम को जीत लिया था। समाचार पत्रों की टिप्पणियां थी कि 'उनके विचार जानने के बाद अब हम समझ गये हैं कि इस ज्ञानमय देश भारत को मिशनरी भेजना कितनी मूर्खता है।' स्वामी विवेकानन्द की वाणी अमेरिका, इङ्गलैंड, फ्रांस यहाँ तक कि पूरे यूरोप में गूंज उठी। उन्होंने कई बार विदेशों का भ्रमण किया। १९०० ई० के अन्तिम महीनों में वह भारत लौटे। कितने ही यूरोपियन अब उनके शिष्य थे, कुछ ने भारत को ही अपना कार्य क्षेत्र बनाया। मकर संक्रान्ति १३ जनवरी १९०१ को उन्होंने अपना ३८ वाँ जन्म दिवस मनाया और ४ जुलाई १९०२ को निर्विकल्प समाधि लगा परम ब्रह्म में लीन हो गये। उनका वाक्य "Buddhism is the rebel child of Hinduism and Christianity a distaut echo" बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म का विद्रोही बालक है और ईसाई धर्म हिन्दू धर्म की दूर से आने वाली प्रतिध्वनि है। ऐसा कहना आज भी भारतीय धर्म की महानता प्रदर्शित करता है।

अध्याय–७ (ख)

(मैक्समूलर की अन्य घोषणाओं का प्रभाव)

(१) मैक्समूलर की इस घोषणा कि 'आर्य एक जाति थी, जो मध्य एशिया से भारत में आक्रान्ता के रूप में आई, तथा द्रविड़ों को मारकर, हराकर उसने भारत पर शासन किया" उसी काल से विरोध चलता रहा। पर १८५९ से १९०४ तक जो विरोध हुआ वह अधिकतर यूरोपियन विद्वानों द्वारा ही हुआ। भारतीय अभी इतने अंग्रेजी के विद्वान नहीं बने थे थे कि इस बहस में भाग ले सकें। एक अंग्रेजी विद्वान नेसफील्ड का कथन था 'भारत में जो लोग रहते हैं उनमें ऐसा कोई भेद नहीं पाया जाता कि आर्य लोग विजेता हैं और वहाँ के आदिवासी कहे जाने वाले लोग विजित हों। वहाँ ब्राह्मण लोग अधिकतर श्याम रंग के दिखाई देते हैं वह हलके या गोरी चमड़ी के नहीं हैं और न उनकी शरीर की हड्डियों की बनावट भिन्न है।"

पाश्चात विद्वानों ने ही इस कथन का बड़ी दृढ़ता के साथ विरोध किया। उन विद्वानों में वोडन प्रोफेसर एच० एच० विलसन, डब्लू० डी० विटने व वार्थलीमियो सेन्ट हिरेली विशेष थे। अन्त में इस विरोध के कारण 'आर्य जाति' के सिद्धान्त के विरुद्ध स्वयं मैक्समूलर को सन् १८८८ ई० में यह लिखना पड़ा कि "मैं बार-बार इस बात को स्पष्ट कर चुका हूँ कि जब मैं 'आर्य' शब्द का प्रयोग करता हूँ तो मेरा मतलब न रुधिर से होता है, न हड्डियों से न सिर की बनावट से और न बालों से। मेरा 'आर्य' शब्द से केवल आर्य भाषा बोलने वाले से है। मेरी दृष्टि में शरीर-विज्ञान वाले जो आर्य जाति, आर्य रुधिर, आर्य नेत्र, और केशों की बात करते हैं वह उतने ही बड़े पापी हैं जैसे भाषा-विज्ञान वाले जो शब्द कोष व व्याकरण की रचना की बात करते हैं।"

लेकिन सभी पाश्चात्य विद्वानों और उनके अनुयायियों ने मैक्समूलर को आधार मान आर्य जाति द्वारा १५०० ईसा० पूर्व भारत द्रविड़ सभ्यता का नष्ट करना मान लिया और इसका लगातार शिक्षा-द्वारा पाश्चात विद्वानों के लेखों द्वारा इतना प्रचार हुआ कि भारत में आर्य व द्रविड़ दो जातियाँ मानी जाने लगीं और सभी अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त विद्वान तक इस जाति कल्पना को वास्तविक समझाते चले आये। यद्यपि दक्षिण भारत में संस्कृत के विद्वान उत्तर भारत से अधिक मिलते हैं। वेदों का स्वर पाठ की परम्परा व उस काम को करने वाले वंश आज भी दक्षिण में ही मिलेंगे, उत्तर भारत में नहीं। बद्रीनाथ मन्दिर में दक्षिण केरल का ही पुजारी रहता है और वहीं का पुजारी वृन्दावन मन्दिर में भी।

आर्य भाषा व द्रविड़ भाषा का अन्तर भी धोखा है जो पाश्चात्य लोगों ने खड़ा किया।

मैक्समूलर की इस असत्य घोषणा का प्रभाव १९०४ ई० तक ही नहीं उसके पश्चात भी चलता रहा और सन् १९२० के बाद जो पुरातत्व सम्बन्धी खुदाई मोहन-जोदड़ो व हड़प्पा में सन् १९२१ में श्री राखाल दास बनर्जी व रायबहादुर श्री दयाराम साहनी के परिश्रम से हुई, उसे आर्यों के आक्रमण और द्रविड़ सभ्यता का नष्ट किया जाना बताया गया।

आर्य जाति, आर्य भाषा आदि भ्रमक विचार का परिणाम भारत में ही नहीं, स्वयं जर्मनी में ही दिखाई दिया। १९३३ ई० से १९४५ ई० तक हिटलर जर्मनी का सर्वसत्ताधारी रहा। उसने रट लगा रखी थी कि जर्मन लोग मूलतः आर्य हैं और ज्यू (यहूदी) लोग अनार्य हैं। और उसने ६० लाख ज्यू मार डाले।

जहाँ तक भाषा की समानता के आधार पर यह 'आर्य जाति' का निर्माण बताया गया, उस पर सन् १८८१ ई० में ही एक ग्रन्थ 'Sanskrit and its Kindred Literatures—Studies in Comparative Mythology' छपा जिसकी लेखिका लॉरा एलिजाबेथ पुअर हैं और प्रकाशक हैं C. Kegan Paul & Co Paternoster Squave, London. इस ग्रन्थ के पृष्ठ १ व २ पर लॉरा लिखती है—"विभिन्न देश

एक दूसरे से चाहें कितनी ही दूर हों उनके साहित्य में मानवी विचारों की एक ही छवि दीखती है—संस्कृत भाषा ही सबको एक सूत्र में पिरोती है। सालोमन के समय (यानी ईसा० पूर्व १०१५ में) और अलकजेंडर के समय (ई० पूर्व ३२४) में भी संस्कृत बोली जाती थी। वह पृष्ठ १४२ पर लिखती है 'ईसा० पूर्व २२३४ में ईरान पर आर्य शासन था। इस्लामी देश बनने पर ईरान बदल गया' (पृष्ठ १७३)। संस्कृत साहित्य की बात करते हुये वह कहती है कि यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि वह स्वयं प्रेरित था। अन्य किसी प्रदेश के सम्पर्क के बिना ही संस्कृत-साहित्य का गठन हुआ। ग्रीक-साहित्य इस प्रकार स्वतन्त्र नहीं है। संस्कृत-साहित्य आध्यात्मिक, दयार्द्र और सद्गुणी (पवित्र)-सा लगता है जबकि ग्रीक-साहित्य कृत्रिम, अनैतिक, अनआध्यात्मिक-सा लगता है' लॉरा आगे लिखती है। यूरोप में 'पवित्र मन्त्र सीखने के लिये ड्रइडो को २० वर्ष का समय दिया जाता था, किन्तु वे इन्हें लिखते नहीं थे अतः यह सारा ज्ञान-साहित्य लुप्त हो गया। इस पर चिन्ता करने की बात नहीं क्योंकि वेद-मन्त्र तो उपलब्ध हैं"।

अर्थात् संसार को संस्कृत भाषा व वेद का ज्ञान भारत से गया, मध्य एशिया से नहीं, क्योंकि वेदों की भूमि तो मैक्समूलर भी भारत को ही मानते हैं।

पर दुःख है कि मैक्समूलर की यह विकृत ऐतिहासिक खोज कि 'आर्य' एक जाति थी आज भी संसार पर छायी हुई है और संघर्षों का कारण बनी हुई। और भारत के इतिहास लेखन को प्रभावित कर रही है।

(२) **मैक्समूलर की दूसरी घोषणा** को हम तीन भागों में बाँटते हैं और फिर हर एक प्रथक-प्रथक लेंगे।

(i) ग्रीक इतिहासकारों द्वारा जिस संड्रोकोट्टस का वर्णन आता है वह चन्द्रगुप्त मौर्य है। और इस सम्बन्ध में जोन्स का कथन सत्य है।

(ii) भारतीय इतिहासकार आमतौर पर अनिश्चित ही रहते हैं और उनके लेख (पुराण आदि) अत्युक्ति पूर्ण और उनके दिये सभी राजा

एक से, सभी अच्छे या सभी बुरे हैं। काल्पनिक कथा व कहानियों से घिरे हैं व सब वंशावलियां काल्पनिक लगती हैं।

(iii) भारतीयों को इतिहास लेखन का कोई ज्ञान नहीं था उनके युग केवल कल्पना पर आधारित हैं असम्भव समय को दर्शाने वाले हैं, तथा कोई ऐसी तिथि नहीं है जिससे काल गणना कर वास्तविक समय निकाला जा सके, अतः उनका पूरा इतिहास चन्द्रगुप्त मौर्य की तिथि निश्चित होने पर आधारित है और वह तिथि ग्रीक इतिहास अनुसार ३२० ई० पूर्व के करीब की पड़ती है, तथा कुल राम व मनु तक का समय जोन्स ने १२०० ई० पूर्व ठीक ही निकाला है।

(i) मैक्समूलर की दूसरी घोषणा के सम्बन्ध में जहाँ तक प्रथम भाग का प्रश्न है उस समय कोई अंग्रेजी पढ़ा विद्वान जिसने भारत व ग्रीक इतिहास का तुलनात्मक अध्ययन किया हो वही विरोध कर सकता था, अतः ऐसा वह कोई पाश्चात्य विद्वान ही उस समय का हो सकता था। इसका उस समय विरोध यम० ट्रोयर ने अपने 'राजतरंगनी' के अनुवाद के प्राक्कथन में किया था, तथा एक पत्र द्वारा अपने विचार मैक्समूलर को भी लिख भेजे, परन्तु मैक्समूलर ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया। और यह घोषणा निर्विरोध १९०४ ई० तक तो चली ही आई।

(ii) भारत में इस समय 'सुधार आन्दोलन' प्रबल रूप से चल रहा था। बंगाल में ब्रह्म समाज, उत्तर भारत में महर्षि दयानन्द सरस्वती व आर्य समाज, तथा दक्षिण भारत में श्री रानाडे की 'प्रार्थना सभा' सभी अपने-अपने रूप में हिन्दू समाज में आई कुरीतियों को मिटाने पर बल दे रहे थे। और ईसाई पादरियों के कुप्रचार से हिन्दू समाज को बचाने के लिये लगे हुये थे। भारतीय धर्म व वेदों की रक्षा के संघर्ष में तो इन लोगों ने विजय प्राप्त की, पर पुराणों की ओर ध्यान नहीं दिया गया, और उनमें भरे भारतीय इतिहास पर ध्यान नहीं गया। और उनकी प्रामाणिकता पर जो आघात हो रहे थे, उनसे बचाने का यत्न भी मुश्किल से ही इस काल में किसी भारतीय ने किया। पुराणों का इतिहास के रूप में पुनः अवलोकन करना, उनको समय के साथ जोड़ना (Uptodate करना) तो मुस्लिम

काल में ही बन्द हो गया था। अब न नये व्यास थे और न उनको कण्ठस्थ करने वाले सूत थे। अब तो ऐसे अंग्रेज इतिहासकारों या उनके अनुयायियों से पाला पड़ा था जो यदि किसी ने किसी पुराण को Uptodate किया, तो पुराण ही नया व अविश्वसनीय बन गया।

तो भी अंग्रेज इतिहासकार इस काल में भी पुराणों की वंशावलियों को सत्य मानकर उपयोग करते थे जैसे मैक्समूलर ने अशोक का पितामह चन्द्रगुप्त बताया।

वोडन प्रोफेसर विलसन ने व्यास व सूत परम्परा की प्रशंसा की है और लिखता है "कि महाभारत के पश्चात तो विष्णु पुराण में, अन्य पुराणों के समान, राजाओं और वंशों का क्रमवद्ध इतिहास मिलता है और राजनीतिक घटनाओं व वंशों का इतने विस्तार से वर्णन है, कि उस पर दोष निकालना कठिन है, वास्तव में इन पुराणों में दिये तथ्यों की सत्यता निर्विवाद है। शिला-लेख, स्तूप, तथा मुद्रायें जिनको मिस्टर जोन्स प्रिंसेप के अथक प्रयत्न से पढ़ा जा सका, वह पुराणों में दिये नामों व वंशावलियों तथा गुप्त व आन्ध्र राजाओं की उपाधियों को सत्य सिद्ध करती हैं।"

कर्नल टॉड जिनका प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ 'राजस्थान' है, उसमें लिखते हैं कि जो लोग इस देश के हिन्दुओं से ग्रीक व रोमन लोगों जैसा ऐतिहासिक वर्णन देने की आशा करते हैं, वह इसके निवासियों की विशेषताओं और विलक्षणताओं को नहीं समझ पाये। इस देश के निवासियों का दर्शन, कवित्व, शिल्पकला सभी स्वयं प्रेरित व मौलिक है, और यही बात उनके इतिहास लेखन की कला व उद्देश्य पर लागू है क्योंकि इनकी सभी कलायें व कार्य धर्म प्रधान हैं।

कर्नल टॉड आगे कहते हैं कि 'पाश्चात्य इतिहासकारों द्वारा लिखित जैसा इतिहास न होने पर भी,इस देश में प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है, जिसके आधार पर चतुर व धैर्यवान खोज-कर्ता इस देश का इतिहास लिख सकता है। इस सामग्री में पुराणों व राजाओं सम्बन्धी वृत्तान्तों का पहला स्थान है केवल उनको काल्पनिक व असम्भव

गाथाओं से अलग रखकर देखने की आवश्यकता है तो बहुत सी उपयोगी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हो जाती है।

एक और यूरोपियन विद्वान ए० स्टेन राजतरंगनी' के वेस्ट मिनस्टर छपे अनुवाद के प्राक्कथन में एम० ट्रोयर के समान इस बात की पुष्टि करता है कि भारत में प्राचीन इतिहास लेखन के लिये बहुत सी सामग्री उपलब्ध है और घटनाओं व परम्पराओं का वर्णन प्रचुर रूप में मिलता है।

एक भारतीय विद्वान टी० एस० नारायण शास्त्री जिन्होंने अपना शोध-पत्र 'शंकर का काल' में विभिन्न शास्त्रों को टटोला, लिखते हैं कि 'मैं सरकारी ग्रन्थालों (Archives) में रक्खी ऐतिहासिक सामग्री व वंशावलियाँ, तथा शिला लेख आदि से इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि पुराणों में दी हुई वंशावलियां तथा ऐतिहासिक घटनायें आश्चर्यजनक रूप से सत्य हैं।'

पर उस समय के पाश्चात्य 'भारत सम्बन्धी' अधिकतर लेखक, ए० मेकडोनल के दिये इस विचार से सहमत थे।

"भारतीय साहित्य में इतिहास लेखन की त्रुटि दिखाई देती है। वास्तव में कोई इतिहास-लेखन है ही नहीं। ऐतिहासिक चेतना का पूर्ण अभाव भारतीयों का विशेष लक्षण है, परिणामस्वरूप पूरा संस्कृत साहित्य, इस दुर्गुण के कारण, अन्धकारमय बन गया है और काल गणना का पूर्ण अभाव है।....इस विचित्र अवस्था के दो कारण मालूम पड़ते हैं (१) प्राचीन भारत में इतिहास इसलिये नहीं लिखा गया क्योंकि वास्तव में उनका कोई इतिहास था ही नहीं। उन्होंने ग्रीक, फारसियों और रोमन लोगों के समान अपने अस्तित्व के लिये युद्ध नहीं लड़े जिससे वह जनजातियों में विकसित हो राष्ट्र बन पाते और राजनीतिक महत्व को प्राप्त होते। (२) दूसरा कारण यह है कि ब्राह्मणों का काम था इतिहास लिखना, परन्तु वह 'कर्म' को ही पाप का मूल समझते थे अतः उन्होंने कर्मों का बखान करना अथवा घटनाओं को क्रमबद्ध लिखना उचित न समझा। इस-

लिये ५०० ई० के उपरान्त ही काल-बद्ध ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन मिलता है।"

यह अवस्था, यह भाव केवल पाश्चात्य विद्वानों में ही नहीं था, यह उस काल (१९०४ ई० तक) में जन्मे भारतीय नेताओं में भी मिलता है जैसे पं० जवाहरलाल जी व श्री के० एम० मुंशी भी इस विचार के रहे कि भारतीयों में ऐतिहासिक काल-चेतना का अभाव था।

ऐसा काल था १९०४ ई० तक।

(iii) जहाँ तक मैक्समूलर की दूसरी घोषणा के तीसरे भाग का सम्बन्ध है भारत की काल-गणना युगों व मनवन्तरों के गणित को जो पृथ्वी की आयु १ अरब ९७ करोड़ वर्ष से अधिक बताती थी, तथा मानव वंश का काल भी करोड़ों वर्षों में गिनता है, कौन पाश्चात्य विद्वान् मान सकता था। महाभारत युद्ध का काल ही ३१३८ ईसा पूर्व बताया जाये, उसे कौन पाश्चात्य युरोपियन उस काल में स्वीकार कर सकता था। यह तो बाइबिल का विरोध ही नहीं उसको असत्य सिद्ध करने का प्रयत्न था। बाइबिल तो कहती है कि ४००४ ईसा० पूर्व सृष्टि का निर्माण हुआ, भला मनुष्य कैसे पहले पैदा हो सकता है।

यह वह काल नहीं था, जब विज्ञान ने धीरे-धीरे पृथ्वी की आयु पर हिन्दू गणना का समर्थन कर दिया है, आज तो कुछ सिर-फिरे इंङ्गलैंड में भी इस पर संदेह करने लगे हैं कि वास्तव में ईसा भी कोई व्यक्ति हुआ था या नहीं जैसा कि Illustrated Weekly के अंक ६-१२ मई १९८४ ई० में इंङ्गलैंड में छपी एक पुस्तक की समालोचना जो बी० बी० सी० पर प्रसारित हुई थी, में दिया है।

इसलिये काल गणना सम्बन्धी मैक्समूलर की घोषणा की किसी यूरोपियन विद्वान ने विरोध तो दूर समालोचना भी नहीं की।

केवल महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपनी पुस्तक 'सत्यार्थ-प्रकाश' में काल-गणना की पुष्टि की और युधिष्ठिर से लेकर पृथ्वीराज तक के राजाओं के नाम किसी ऐतिहासिक पत्रिका से दिये जो 'कलियुग' की पुष्टि

करते हैं। पर उन्होंने पुराणों का नाम नहीं लिया। यह पुस्तक भी मैक्स-मूलर के उत्तर में नहीं लिखी गई।

एक और उदाहरण मिलता है वह भी भारतीय का है कि सन् १८५७ ई० में जस्टिस के० टी० तेलिंग ने 'भागवत गीता का अंग्रेजी में अनुवाद' की पुस्तक में पाश्चात्य भारत सम्बन्धी लेखकों तथा विशेष रूप से मैक्समूलर का तीव्र विरोध प्रगट करते हुये लिखा है कि यह संस्कृत साहित्य की प्राचीनता को अपने पूर्वाग्रहों के कारण नुकसान पहुँचा रहे हैं और तेलिंग जी चिलिंगवर्थ के कठोर शब्दों का सहारा लेते हुये लिखते हैं कि 'यह पाश्चात्य विद्वान केवल स्वप्न जैसी बात करते हैं और अपने स्वप्नों को फिर सत्य समझ बैठते हैं।'

पर १९०४ तक के जन्मे और उस काल में अंग्रेजी विद्यालयों में विकृत इतिहास पढ़े हुये राधाकृष्णन् और वीर सावरकर जैसे विद्वान भी अंग्रेजों द्वारा दी हुई तिथियों को बगैर जांचे सही मानते रहे।

सन् १९०४ तक ऐसा ही काल था, अंग्रेज महाप्रभु समझे जाते थे, अंग्रेजी शासन एक ईश्वरीय देन के समान था। कांग्रेस में अभी तक God save the king गाया जाता था और (यूनियन जैक) अंग्रेजों का झण्डा फहराया जाता था।

भला उस समय 'कलि-संवत', 'युधिष्ठिर-संवत' की कौन वकालत करता। कौन कहता कि परीक्षित का सिंहासन पर बैठना, या महाभारत युद्ध जिससे पुराण काल-गणना करते चले आये थे वह वास्तविक काल-गणना के आधार बन सकते हैं। भारत का इतिहास भारतीय आधार पर लिखा जाना चाहिये यह कौन कह सकता था।

अतः १९०४ ई० में 'प्राचीन भारतीय इतिहास की आधार शिला' जिसको सर विलियम जोन्स ने रखा, कर्नल विलफोर्ड ने अनुमोदन किया था और मैक्समूलर ने अपनी मान्यता दे पक्का बना दिया था, उसको सत्य मानकर, और यह मानकर कि पुराणों में काल बढ़ा-चढ़ाकर दिया

गया है पर वंशावलियां ठीक हैं वी० ऐ० स्मिथ ने 'Early History of India' प्राचीन भारत का इतिहास लिख दिया।

वंश के नाम जो पुराणों में दिये हैं	पुराणों का दिया काल	जोन्स की पहली तालिका का दिया काल	स्मिथ द्वारा निश्चित काल
नन्दों का	१०० वर्ष	१०० वर्ष	४६ वर्ष
मौर्यों का	३१६ ,,	१३७ ,,	१३७ ,,
शुंगों का	३०० ,,	११२ ,,	११२ ,,
कण्वों का	८५ ,,	३४५ ,,	४५ ,,
आन्ध्रों का	५०६ ,,	४५० ,,	२८९ ,,
गुप्तों का	२४५ ,,	—	१४९ ,,

मिस्टर वी० ऐ० स्मिथ द्वारा लिखित यह इतिहास की पुस्तक उस समय बहुत प्रमाणिक मानी जाती थी. इसमें काल-गणना जो निश्चित की गई केवल स्मिथ की कल्पना के आधार पर है। उन्होंने मौर्य वंश के प्रथम राजा चन्द्रगुप्त मौर्य को अलकजेंडर का समकालीन मान उसका समय ३२६ ईसा० पूर्व निश्चित कर, भारत का इतिहास अलकजेंडर के आक्रमण से प्रारम्भ किया और अपनी पुस्तक का १/५ भाग इसी से भर दिया। नन्द से पूर्व का इतिहास नहीं माना और महाभारत आदि को काल्पनिक बताया।

वी० ऐ० स्मिथ द्वारा लिखा इतिहास भारत के अंग्रेजी स्कूलों में १९२६ ई० के बाद तक पढ़ाया जाता रहा। लेखक ने हाई-स्कूल परीक्षा १९२५-२६ में पास की तथा नवें क्लास में १९२४-२५ से स्मिथ के इतिहास को पढ़ा।

वी० ऐ० स्मिथ ने जो काल गणना जोन्स की 'आधार-शिला' पर दी, वह आज भी चल रही है। उनके काल में कुछ भारतीय विद्वान जैसे व० र० रामचन्द्र दीक्षित, र० ड० बनर्जी और डी० सी० सरकार तथा कुछ अन्य ने कुछ परिवर्तन सुझाये और स्मिथ से भिन्न मत प्रगट किया,

वह चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण के बारे में है कि वह ३१२, ३१५, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६ या ३२७ ईसा० पूर्व में सिंहासन पर बैठा। परन्तु उन्होंने स्मिथ से कोई मौलिक, महत्वपूर्ण मतभेद न प्रगट किया और न ऐसा करने का साहस दिखाया। फ्लीट सन् १९०६ में 'रोयल ऐशियाटिक सोसाइटी' के 'जनरल' में पृष्ठ ९४८ पर लिखता है 'आजकल यह भावना बढ़ रही है कि अशोक के १३ वें शिला-लेख जिसमें विदेशी राजाओं का उल्लेख है, उससे चन्द्रगुप्त के बारे में कुछ और जानकारी उपलब्ध हो गई है, परन्तु यह भावना सत्य नहीं है। ग्रीक लेखकों से यह पता चलता है कि चन्द्रगुप्त उत्तर भारत का राजा ३२६ ईसा० पूर्व से ३१२ ईसा० पूर्व के बीच में बना, इसीलिये भिन्न-भिन्न लेखक भिन्न-भिन्न तिथियां दे रहे हैं।"

अध्याय—८

(राष्ट्र चेतना का विकास व जोन्स के सिद्धान्त का विरोध)

सन् १९०५ से १९४७ ई० तक का काल :—

सन् १९०५ में जापान जैसे एशिया के छोटे से राज्य ने पाश्चात्य रूस जैसे विशाल देश को बुरी तरह परास्त कर दिया तब रूस के जार निकोलस द्वितीय का बड़ा अपमान हुआ। इस जापान की विजय का भारत-वासियों के मन पर बहुत प्रभाव पड़ा और उनके हृदय में भी यह विश्वास जमा कि अंग्रेजों को भी भारत से निकाला जा सकता है।

सन् १८५७ ई० के स्वतन्त्रता युद्ध के बाद कुछ छुटपुट घटनायें सशस्त्र क्रान्तिकारियों की चलती रही थीं, पर अंग्रेजी पढ़ा व्यक्ति ब्रिटिश शासन का भक्त बन चुका था। पर सन् १९०५ में यह दिखाई दिया कि अंग्रेजी पढ़े हुए नवयुवक ब्रिटिश शासन के विरुद्ध खड़े हो रहे हैं और क्रान्तिकारी उन्हीं में से निकल रहे हैं। लार्ड कर्जन ने इस देश-प्रेम की भावना को कमजोर करने के लिये, तथा मुस्लिम समाज में अलगाव-वाद की भावना उत्पन्न करने के लिये १६ अक्टूबर १९०५ को बंगाल का विभाजन कर मुस्लिम बहुमत प्रान्त पूर्वी बंगाल बना दिया।

बंग भंग का कड़ा विरोध किया गया। रविन्द्रनाथ ठाकुर के नेतृत्व में ५०,००० लोगों ने कलकत्ता में गंगा स्नान कर एक दूसरे के राखी बाँधी, और वन्देमातरम् का घोष किया। लाल, बाल व पाल ने ब्रिटिश सत्ता को ललकारा और स्वराज की माँग प्रबल होने लगी। कांग्रेस में भी परिवर्तन आया। सशस्त्र क्रान्तिकारियों में अधिकतर अंग्रेजी पढ़े हुए स्नातकों को कार्य को बढ़ाना दिखाई दिया। देश के हर भाग में क्रान्तिकारी संगठन का

श्रीगणेश हुआ और वीर सावरकर यूरोप में अन्य साथियों के साथ १९०५-१९१० तक कार्य करते दिखाई देते हैं।

इस जागरण से सोती हुई राष्ट्र चेतना जाग्रत हुई। १९०७ ई० में सावरकरका महान ग्रन्थ 'भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम' १८५७ ई० के कहे जाने वाले गदर पर लिखा गया जो प्रकाशित होने से पहिले ही ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया।

राष्ट्रीय चेतना जागृति के साथ इतिहास-लेखन बदलता है। इस काल में सन् १९२६ ई० तक यद्यपि स्कूलों में स्मिथ का लिखा इतिहास पढ़ाया जाता था, पर विभिन्न भारतीय विद्वानों ने इतिहास का लिखना प्रारम्भ कर दिया। बाल गंगाधर तिलक ने आर्यों को मध्य-एशिया से आने का खण्डन किया, पर वेद मन्त्रों में 'हिम' शब्द तथा वर्ष को 'शरद' से सम्बोधन होने से आर्यों का मूल प्रदेश ध्रुव क्षेत्र बताया। श्री अवनाश चन्द्र दास ने आर्यों का भारत में बाहर से आने का खण्डन किया और सप्त सिन्धु को उनका मूल स्थान बताया और कहा कि उस काल का भारत चारों ओर से समुद्र से घिरा था बिहार, बंगाल, राजस्थान व दक्षिण सभी समुद्र में लीन थे। हम यहीं के हैं यह देश हमारा है यह भावना थी। वीर सावरकर ने 'हिन्दू पद पादशाही' तथा "भारतीय इतिहास के छः स्वर्ण पृष्ठ" तथा हिन्दू शब्द की उत्पत्ति पर "हिन्दुत्व" जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे। राणा प्रताप, शिवाजी, बन्दा वैरागी, तथा चाणक्य-चन्द्रगुप्त पर नाटक, 'स्कन्द गुप्त' आदि बहुत से ऐतिहासिक नाटक, उपन्यास लिखे गये, बहुत-सी कथायें व काव्य जैसे मैथिलीशरण आदि का प्राचीन गौरव पर सृजन हुआ।

जैसे-जैसे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन प्रबल होता गया, सन् १९२१, १९३०, १९४२, में वैसे-वैसे नये ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे जाने लगे। १९२२ में एक अंग्रेज लेखक पार्जीटर के दो ग्रन्थ पौराणिक इतिहास के सम्बन्ध में प्रकाशित हुये, तब भारत के नवीन विद्वानों की दृष्टि प्राचीन इतिहासिक-ग्रन्थों की ओर आकृष्ट हुई और स्मिथ के इतिहास की जगह भारतीयों के लिखे 'इतिहास' पढ़ाना प्रारम्भ हुये जिनमें सिकन्दर से पूर्व

प्राचीन भारत का भी वर्णन प्रारम्भ हुआ। महाभारत युद्ध अब ऐतिहासिक घटना हो गई थी, उससे पहिले बुद्ध, महावीर व वैदिक युग लिखा जाने लगा था। पर काल गणना का आधार वही चन्द्रगुप्त=संड्रोकोट्टस और उनका काल वही ३२६ ईसा० पूर्व या उसके आस-पास मानकर प्राचीन युग की गणना करना रहा, और ऐसे ही पुस्तकों को ब्रिटिश सरकार द्वारा मान्यता मिलती थी। जितनी पुरातत्व की खुदाइयां हुई उनको उसी गणना से समय दिया गया। कोई खुदाई तीन हजार, ३½ हजार वर्ष से पूर्व हो ही नहीं सकती, आर्य बाहर से आये अतः द्रविड़ लोगों को मारा, नष्ट किया, यही परिणाम निकाले गये।

सन् १९२२ में अंग्रेज इतिहासकार पार्जीटर ने जब तक पुराणों की सामग्री को ऐतिहासिक मान्यता नहीं दी तब तक भारतीय इतिहासकार उनकी निन्दा ही करते रहे, वह बहुत नवीन है १७ वीं, १८ वीं, १९ वीं, ईसा शताब्दी के लिखे हैं। हमारे प्राचीन इतिहास के महान विद्वान जो प्रमाणिक समझे जाते हैं उन्होंने 'भविष्य पुराण' के 'कलियुग राज वृत्तान्त' को ऐसा ही बताया। श्री उदयनारायण राय अपनी पुस्तक 'गुप्त सम्राट और उनका काल' के संवत २०३३ के संस्करण के पृष्ठ २ पर लिखते हैं कि गुप्त-नरेशों का उल्लेख तो 'कलियुग राज वृतान्त' में ही मिलता है, परन्तु उसको "रमेशचन्द्र मजुमदार ने सिद्ध कर दिया है कि यह एक अप्रामाणिक और जाली ग्रन्थ है जो १८९३ से १९०३ के बीच लिखा गया।" शायद उनका मत इसलिये ऐसा था कि मैक्समूलर ने इसका जिक्र नहीं किया और स्मिथ ने इसे आधार मान गुप्त वंश को अपने इतिहास में १९०४ ई० में दिखा दिया।

इसलिये १९४७ ई० तक राष्ट्रीय चेतना के साथ नवीन इतिहासकार निकले, पर सरकारी स्कूलों में कालगणना सरकार वही मानती थी जो मैक्समूलर व मैकाले ने रख दी थी अतः हमारे इतिहासज्ञ जो सरकारी कालिजों व विद्यालयों में प्रोफेसर थे उसी काल गणना को मान्यता देते रहे।

पर कुछ स्वतन्त्र विद्वान मैक्समूलर तथा जोन्स की काल-गणना को चुनौती देते रहे। उनका मत था कि संड्रोकोट्टस, चन्द्रगुप्त मौर्य न होकर

चन्द्रगुप्त गुप्त वंश का था। और जोन्स ने यह मत गुप्त-वंशीय चन्द्रगुप्त की जानकारी न होने के कारण बना लिया। इसी प्रकार पुराणों को न मानने के कारण बुद्ध का काल १८२५ ईसा० पूर्व से हटाकर अंग्रेजों ने ५०७ ईसा पूर्व रख दिया। इसीलिये लगभग १३०० वर्ष का अन्तर चला आ रहा है। इस मत को मानने वालों तथा जोन्स व मैक्समूलर के आधार को चुनौती देने वालों में—डा० टी० एस० नारायण शास्त्री, एन० जगन्नाथ राव, डा० डी० एस० त्रिवेद आदि के नाम आते हैं।

सन् १९४७ से १९८८ तक का काल :—

सन् १९४७ में १५ अगस्त को भारत स्वतन्त्र हुआ, पर देश का विभाजन हो गया। यह मुस्लिम तुष्टीकरण नीति का परिणाम था जो अंग्रेज सन् १९०५ से लगातार चला रहे थे और कांग्रेस के नेता मुसलमानों को भारतीय स्वतन्त्रता की लड़ाई में अंग्रेजों से खींचकर अपनी ओर मिलाने के लिये इस होड़ में शामिल हो गये थे।

पर भारत में मैकाले द्वारा जो शिक्षा पद्धति चलाई गई थी उसका प्रभाव यह हुआ था :—

(१) कुछ भारतीय (हिन्दू) जो ईसाई मिशनरियों द्वारा खोले गये स्कूलों में जूनियर व सीनियर कैम्ब्रिज परीक्षायें पास कर भारत में निकलते थे या विदेशों में पढ़कर आये थे, वह भारतीय दर्शन, शास्त्र, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, इतिहास पुराण से बिल्कुल अनभिज्ञ थे, या कुछ जानते तो अंग्रेजों की लिखी अंग्रेजी की पुस्तकों से।

(२) दूसरे प्रकार के वह शिक्षित भारतीय (हिन्दू) थे जो भारत में सरकारी स्कूलों तथा कालिजों में पढ़े थे। उन्हे राम, कृष्ण, वाल्मीकि और व्यास का ज्ञान तो था पर पूर्ण ज्ञान नहीं, संस्कृत साहित्य पर न अधिकार और न श्रद्धा। अंग्रेजी ही बोलना और उसी से प्रेम।

(३) तीसरे प्रकार के वह शिक्षित भारतीय (हिन्दू) थे जो प्राइवेट स्कूलों व कालिजों में जैसे डी० ए० वी० स्कूल, कालिज, गुरुकुल आदि में पढ़े

थे। वे भारतीय परम्परा से परिचित थे, तथा लगाव भी था, पर महत्व-पूर्ण स्थानों पर नहीं थे।

भारत में शासन की बागडोर पहिले श्रेणी के लोगों के हाथ में आई और दूसरी श्रेणी के लोग उनके सहायक बने।

और भारत स्वतन्त्र हो जाने पर भी शिक्षा-पद्धति में कोई सुधार नहीं किया गया भारत के पहिले शिक्षा-मंत्री मौ० अब्वुल कलाम आजाद हुये जो अरबी के विद्वान थे जिनके बारे में हम पहले लिख चुके हैं। और परिणाम यह हुआ कि वही पाश्चात्य लेखकों के निष्कर्षों से प्रभावित तथा अंग्रेज राजनीतिज्ञों से विचारित योजना से लिखा गया इतिहास पढ़ाया जाता रहा।

पर देश की स्वतन्त्रता के पश्चात्, पाकिस्तान के बनने तथा उससे कई युद्ध होने के कारण तथा पादरियों के हिन्दू समाज पर प्रबल धर्मान्तर की योजना लेकर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश के कारण हिन्दुओं में आर्य-समाज, हिन्दू महासभा तथा विशेष रूप से राष्ट्रीय स्वयंसेवक के कार्य से हिन्दू संगठन, हिन्दू जन जागरण का कार्य बढ़ा। जैसे-जैसे यह कार्य बढ़ता गया विभिन्न दिशाओं में हिन्दू चिन्तन और प्राचीन इतिहास की ओर दृष्टि बढ़ती गई।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की बैठकों में, शिविरों में, प्रशिक्षण-शिविरों में भारतीय इतिहास पर नवीन दृष्टि से देश के विद्वान बोलने को आमन्त्रित किये जाने लगे और कितने ही अनुसन्धान पूर्ण लेख लिखे गये। पुस्तकें छपीं पुराणों व प्राचीन भारतीय साहित्य में रुचि बढ़ी और कुछ नवीन इतिहासकार जैसे कोटा वेकेटकेलम तथा कृष्णमाचार्य ने सर विलियम जोन्स द्वारा प्रतिपादित व मैक्समूलर द्वारा पुष्ट भारतीय इतिहास की आधार शिला को ही असत्य और अज्ञान पर आधारित बताया। इस मूल आधार पर सामूहिक विचार सम्मेलन आयोजित करने का आह्वान किया।

कई और नवीन दृष्टि से सोचने वाले सामने आये सन् १९६६ में पुरुषोत्तम नागेश ओक ने "भारतीय इतिहास की भूलें" तथा बहुत से

ऐतिहासिक साहित्य की रचना प्रारम्भ की और 'भारतीय इतिहास पुनर्लेखन संस्थान' को जन्म दिया। सन् १९७६ ई० में श्री सत्यकेतु विद्यालंकार, डी. लिट (पेरिस) का "प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग" जिसे उन्होंने वे महाभारतके युद्ध तकमाना, छपा। जिसकी प्रस्तावना में वह लिखते हैं कि "वैदिक युग के इतिहास पर अन्य भी अनेक पुस्तकें गत वर्षों में हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं। पर उनमें प्रायः उन्हीं मन्तव्यों को उल्लिखित किया गया है। जिनका प्रतिपादन पाश्चात्य विद्वानों ने किया है। पर मैंने इस ग्रन्थ में भारतीय विद्वानों के मतों का भी निर्देश कर दिया है जिससे वैदिक युग के सम्बन्ध में पाठक उन मतों से भी परिचित हो सकेंगे, जो भारत के परम्परागत विश्वासों के अनुरूप है।"

सन् १९७९ से मद्रास में प्रति चारवर्ष बाद ऐतिहासिक गोष्ठियों का आयोजन 'भारतीय इतिहास कांग्रेस' के नाम से किया जाना प्रारम्भ हुआ जिसमें भिन्न-भिन्न इतिहासकार अपने शोध-लेख पढ़ते हैं तथा सामूहिक रूप से ऐतिहासिक प्रश्नों पर विचार करते हैं।

सन् १९८१ के ऐसे ही एक ऐतिहासिक विचार-गोष्ठी में इतिहास के विभिन्न विद्वानों ने जोन्स व मैक्समूलर द्वारा दी हुई कालगणना का विरोध किया और आन्ध्र प्रदेश के श्री कोटा वेंकटेकलम द्वारा हुई पुराण-आधारित काल-गणना को मान्यता दी।

ऐसी ही ऐतिहासिक गोष्ठियां विभिन्न समय पर भोपाल, वाराणसी तथा अहमदाबाद में होती रही हैं।

बिजनौर जिला (उत्तर प्रदेश) में एक विदुर सेवा आश्रम उस स्थान पर बनाया गया है जहाँ हस्तिनापुर से लौटकर विदुर ने अपना अन्तिम काल महाभारत युद्ध के पश्चात् बिताया। इस संस्थान ने भी दो ऐतिहासिक गोष्ठियों का सन् १९७४ व १९७५ ई० में आयोजन किया।

सन् १९७४ को गोष्ठी में पांच विद्वान जो संस्कृतनिष्ठ पुरातत्व ज्ञाता थे और भारत के प्राचीन साहित्य से परिचित थे, आये।

इस गोष्ठी के पश्चात् डा० डी० सी० सरकार व डा० एच० डी० संगकालिया ने महाभारत युद्ध की प्रामाणिकता पर आक्षेप किया।

फलस्वरूप विदुर सेवा आश्रम की द्वितीय गोष्ठी में जो अक्टूबर १९७५ ई० में हुई १४ विद्वानों में उपस्थित होकर भाग लिया और उनके अतिरिक्त २७ विद्वानों ने अपने शोध-लेख गोष्ठी में पढ़ने के लिये भेजे।

डा० सरकार व डा० संगकालिया द्वारा उठाई बहस के उत्तर में डा० एस० पी० गुप्ता व श्री के० एस० रामचन्द्रन ने सन् १९७६ में एक पुस्तक 'महाभारत युद्ध—काल्पनिक या वास्तविक' का सम्पादन कर छपवाई जिसमें ४० विद्वानों के मत थे, अधिकतर ने इस युद्ध को वास्तविक माना और उसका काल दिया।

तमिलनाडु में एक संस्था एन० महालिंगम ने प्रारम्भ की जो भारतीय प्राचीन इतिहास के महापुरुषों के काल की खोज—जैसे राम, कृष्ण आदि ज्योतिष विज्ञान की सहायता से निश्चित करती है। हमारे हर महापुरुष के जन्म के समय के गृहों की स्थिति प्राचीन साहित्य में मिलती है। इस संस्था ने ज्योतिषाचार्यों की गोष्ठियों का आयोजन किया और सन् १९८० में उन गोष्ठियों का सार 'Mythology to History through Astronomy' 'प्राचीन कथाओं को ऐतिहासिक मान्यता-ज्योतिष द्वारा' पुस्तक के रूप में छापा। सन् १९८२ में पुनः नई गोष्ठियों का सार 'A Peep into the Past History' 'प्राचीन इतिहास की झलक' नाम से पुस्तक निकाली। इन विद्वानों के परिश्रम के अनुसार महाभारत-युद्ध का काल ३०६७ ईसा० पूर्व के पास पड़ता है।

भारतीय जन-जागरण के साथ इतिहास-लेखन का कितना गहरा सम्बन्ध है यह हमने देखा। हर देश के लोग अपने देश के प्राचीन इतिहास पर विश्वास रखते हैं। वह किसी प्राचीन घटना के उल्लेख को सन्देह की दृष्टि से नहीं देखते, और किसी प्राचीन व्यक्ति या महापुरुष को काल्पनिक समझते हैं। फिर क्या कारण है कि भारतीय अपने परम्परागत इतिहास पर सन्देह करें। इसीलिये न, कि अंग्रेज विद्वानों व राजनीतिज्ञों ने जो जान-बूझकर अपने शासन को मजबूत करने की दृष्टि से जो विकृत इतिहास को जन्म दिया और जिसको शिक्षा द्वारा प्रसारित कर भारतीयों को अपना अनुगामी बनाया, उस योजना में हमारे विद्वान फँस गये और अपनी हर चीज को अविश्वास से देखने लगे। यह बौद्धिक दासता है, जो

राजनीतिक पराधीनता से भी बढ़कर है। इसको त्यागना होगा, नहीं तो स्वाभिमानी, स्वतन्त्र, संसार को कल्याण-दायक राष्ट्र खड़ा नहीं हो सकता।

इतिहास राष्ट्र की चेतना का स्वरूप होता है। भविष्य के निर्माण में उसका निश्चित व मार्गदर्शक सहयोग रहता है। उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह ठीक है कि इतिहास सत्य के आधार पर लिखा जाये और समय-समय पर उसकी जांच भी होती रहे, पर उसकी आधार-शिला असत्य नहीं होना चाहिये जो गलत तथ्यों पर किसी विशेष राजनीतिक प्रयोजन से बनाई गई हो।

विदेशी हमारा इतिहास नहीं लिख सकते, नहीं तो इतिहास आक्रान्ताओं के विजय का ही इतिहास होता है। इसलिये बाबा साहब आप्टे स्मारक समिति ने 'भारतीय इतिहास संकलन योजना' के आधीन पिछले ५१०० वर्ष (कलि के प्रारम्भ) का इतिहास लिखने की योजना बनाई है। कई छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'जोन्स व मैक्समूलर' द्वारा जो कालगणना की आधार-शिला रखी गई और जिसको अब तक आधार मानकर इतिहास लिखा गया, उस पर सन् १९८५ में श्री श्रीराम साठे द्वारा लिखित पुस्तक 'क्या संड्रोकोट्टस चन्द्रगुप्त मौर्य था' मनन करने योग्य है।

अध्याय–६

(जोन्स के सिद्धान्त का पूर्ण रूप से खण्डन व सच्चाई की खोज)

भारत बहुत प्राचीन देश है। यहाँ बहुत प्राचीन काल से लोग लिखना-पढ़ना जानते थे। इनके प्राचीन ग्रन्थ भी मिलते हैं। यह ठीक है कि मुसलमानों के काल में बहुत से ग्रन्थ नष्ट कर दिये गये। इस पर भी अभी भी यह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, उनसे भारत के इतिहास का पूरा चित्र खींचा जा सकता है। यह भी ठीक है कि भारतवर्ष के इतिहासज्ञों की इतिहास लिखने की एक विधि थी और विदेशी इतिहासकार एक दूसरी विधि से इतिहास लिखते रहे हैं। इन दोनों विधियों में अन्तर है। विदेशी विद्वान जब भारत आये और भारत का इतिहास ढूँढने लगे तो उनको अपनी विधि अनुसार लिखा हुआ इतिहास नहीं मिला। अतः उन्होंने समझा कि भारतीयों को इतिहास लिखना नहीं आता था। और भारत की काल-गणना व उसकी इतिहास की प्राचीनता देखकर तो वह एक अच्छे ईसाई के समान जिसने बाइबिल पर श्रद्धा रख, यही विश्वास जमा रखा था कि सृष्टि की रचना ही ६००० वर्ष के अन्दर हुई है, उसने सब ही प्राचीन भारतीय साहित्य को अविश्वासनीय घोषित कर दिया, और भारतीय इतिहास से भरे पुराणों, महाभारत, रामायण आदि को काल्पनिक और भ्रमक कथायें ही बता दिया, जो कुछ समय पहिले ब्राह्मणों ने अपने वर्चस्व कायम रखने के लिये रचे थे। अतः पाश्चात्य लेखकों ने पहले पुराण आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों को छोड़कर बौद्ध भिक्षुओं की पुस्तकों से इतिहास ढूंढना चाहा, जिसका उनसे कोई सरोकार नहीं था, तो और उलझन में पड़ गये, और तब उन्होंने भारतीय ग्रन्थों का सहारा छोड़, पत्थर पर खुदे लेखों, मुद्राओं और विदेशी लेखकों के लेखों में भारत का इतिहास खोजना आरम्भ कर दिया।

लिखने का यहअभिप्राय नहीं है कि इतिहास के यह स्रोत अवांछनीय है, और उनसे सहायता नहीं लेनी चाहिये। पर वास्तवमें इतिहास के लेखन में पहला स्थान ऐतिहासिक ग्रन्थों का है जैसे रामायण, महाभारत, ब्राह्मण ग्रन्थ व पुराण तब जाकर शिला-लेख और राज्य मुद्रायें आती हैं। पुरातत्व की खुदाई भी स्वयं नहीं बोलती, उसे जैसे चाहो बुलवा लो वह सभ्यता प्रगट करती है, संस्कृति नहीं, और सबसे अन्तिम स्तर पर विदेशी पर्यटकों के लेख हो सकते हैं।

विदेशियों का ज्ञान, वे कितने ही वर्ष इस देश में क्यों न रहे हों, उतना पूर्ण नहीं हो सकता जितना उस देश के लेखकों का होता है। पहली कठिनाई उनके सामने भाषा की होनी है, फिर वह किसमे मिले, क्या देखा, कितना समझे और क्या लिखा, आती है। फिर भारत जैसा विशाल देश, विशाल साहित्य, वह प्राचीन भाषा में लिखा हुआ, थोड़ी-थोड़ी दूर पर बोलने की भाषा बदलती है। कौन पर्यटक समझ पायेगा। अंग्रेज कितने सालों भारत रहे वही नहीं समझ पाये। अतः पर्यटकों के लेखों पर इतिहास लिखना कहाँ तक ठीक था ?

उदाहरण के रूप में अलबरूनी ने जो कुछ तत्कालीन भारत के विषय में लिखा वह बहुत अच्छा होते हुये भी कभी भी पूर्ण व सर्वदा सत्य नहीं हो सकता। वह एक विदेशी आक्रमणकारी के साथ आया था जिसने भारत के मन्दिर तोड़े। वह भारत के उत्तर-पच्छिम क्षेत्रों में ही रहा और कुछ लोगों से मिला होगा उसे अपने काल से बहुत पूर्व गुप्त वंश का क्या ज्ञान होगा, पर गुप्त संवत श्री उदयनारायण राय के अनुसार, अलबरूनी के मत के अनुसार शक संवत से २४१ वर्ष बाद प्रारम्भ होना मान लिया गया। क्योंकि शक संवत ७८ ई० में प्रारम्भ होता है। अतः गुप्त संवत की आरम्भिक तिथि (२४१+७८)=३१९-२० ई० हुई। पुराणों के मत के अनुसार गुप्त संवत ३२८ या ३२७ ईसा० पूर्व में चन्द्रगुप्त के द्वारा पाटलीपुत्र के राज्य से प्रारम्भ हुआ।

दूसरा उदाहरण चीनी पर्यटक ह्वेनस्यांग का लो—जिसने हर्षवर्धन के पिता प्रभाकर वर्धन और उसके भाई राज्यवर्धन को भी कन्नौज का

राजा बताया है। इसके स्पष्ट प्रमाण इतिहास में मिलते हैं कि वह दोनों स्थानेश्वर के राजा थे, और आज वहीं पर पुरातत्व विभाग उनके लिये खुदाई कर रहा है।

तीसरा उदाहरण मैगस्थानीय का हम पहले लिख चुके हैं। उसकी मूल पुस्तक तो पहले ही अप्राप्त हो चुकी थी। कुछ उदाहरणों पर जर्मन विद्वान श्वेन बैक ने उसे प्रकाशित किया, उसमें कैसे नाम बिगाड़े गये हैं कि यह पता लगाना वह कौन से नगर में रहा, कौन राजा था कठिन है, उसके कुछ वृत्तान्त इतने भ्रमक हैं कि उनको तो दोहराना भी बेकार है।

इतिहास की यह लेखन विधि पाश्चात्य विद्वानों ने अपनाई और उस पर वह अपने पूर्वाग्रहों से ग्रसित थे, तथा उनका उद्देश्य भारत में अपने धर्म व संस्कृति की उच्चता दर्शाकर शासन को दृढ़ करना था।

विदेशी शैली के इतिहास संकलन का उदाहरण श्री गुरुदत्त ने अपनी पुस्तक 'इतिहास में भारतीय परम्परायें' में दर्शाया है कि इस शैली से लिखा गया इतिहासकितने दुर्बल आधारों पर है। A New History of Indian People Volume VI में गुप्त साम्राज्य का वर्णन है। इस पुस्तक में श्री रमेशचन्द्र मजुमदार M. A., Ph. D., P. R., A. S. B. तथा श्री सदाशिव अल्तेकर M. A., LL. B., D. Litt. लिखते हैं :—

"समुद्रगुप्त के राज्यारोहण के समय से भारत के राजनीतिक इतिहास का हमारा ज्ञान अधिक विस्तृत और ठीक हो जाता है। यह इस कारण है कि इसके राज्यकाल में पत्थर और ताम्र-पत्रों पर बहु-संख्या में लेख अंकित किये गये हैं।" फिर इस बहु-संख्या की व्याख्या करते हुये लिखते हैं:—

"समुद्रगुप्त के अपने दो लेख पत्थर पर खुदे मिलते हैं और दो ताम्र-पत्रों पर। इनमें दो पर तिथि नहीं लिखी और दो ताम्र-पत्रों पर संवत् ५ और ९ लिखा है। इन दो ताम्र-पत्रों की, जिनमें संवत् लिखे हैं, सच्चाई पर बहुत लोग सन्देह करते हैं।"

इस दुर्बल आधार पर इतिहास लिखा गया। इस पाश्चात्य शैली

में और लेखक उसे 'अधिक मात्रा में ठीक-ठीक' मानते हैं। इन प्रमाणों के अतिरिक्त पुराण आदि ग्रन्थों में उपलब्ध सामग्री को देखना भी नहीं चाहते, क्योंकि विंटरनित्ज अंग्रेज विद्वान कह गया है कि विष्णु पुराण पाँचवी शताब्दी की रचना है। वायु पुराण की तिथि लगभग वही है और भागवत पुराण तो गुप्त-काल के बहुत बाद रचा गया और भविष्य पुराण व उसका कलियुग-राज्य वृत्तान्त को तो स्वयं मजुमदार जी ने १८९३ से १९०३ के बीच की जाली रचना बता दी है।

पर इन पुराणों को पाश्चात्य इतिहासकार जाली, अविश्वासनीय और कल्पित बताते तो रहे, पर इनकी वंशावलियां व घटनायें अपने लेखों में सत्य मानकर उद्धरित करते रहे। यह उनकी दोहरी नीति थी, क्योंकि काल-गणना बदलनी थी। श्री वेंकटेलम ने पुराणों का विषद अध्ययन किया और इस परिणाम पर पहुँचे कि पुराणों के बारे में जो मत प्रगट किये गये हैं वह असत्य व भ्रमपूर्ण हैं। भारत में व्यासों—जो इतिहास लेखन का काम करते थे, जो न वेतनधारी व्यक्ति थे, न उन्हें यश कमाना था, न अपना नाम अमर करना था, उन निस्वार्थ विद्वानों की परम्परा थी, जैसी संसार में अन्य कहीं नहीं मिलती। उनकी शैली भिन्न थी, पर तथ्यों से भरी हुई और ऐतिहासिक सत्यों को प्रदर्शित करने वाली थी, उन पुराणों की रक्षा के लिये सूत-वंशों का उदय होना भी भारत की विशेषता है। और सूत हर भाषा में देश के विभिन्न भागों में जन-साधारण तक ऐतिहासिक ज्ञान को पहुँचाने के लिये, इसलिये पुराण के भिन्न-भिन्न संस्करण होना कौन-सी आश्चर्य की बात है। इतिहास वह जो काल के साथ नये तथ्यों को सम्मिलित करता जावे, यह उसके प्रामाणिकता का गुण है। इसलिये भी विद्वानों के समय-समय पर सम्मेलन होना, विचार-विमर्श होना, भूलों को सुधारना तथा पुराणों में आगे का इतिहासजोड़ना—यह भी होता रहा। किसी व्यास ने पिछले पुराण में नया इतिहास जोड़ दिया, तो क्या दोष हुआ। इसलिये पुराण की मान्यता घटाना कितना बड़ा अन्याय है।

'भविष्य पुराण' के साथ भविष्य ही जुड़ा है, उसकी शैली भविष्य बताने वाली होगी। यह शैली भारत में उस काल में प्रचलित थी। अनेक

ग्रन्थ इस शैली में लिखे गये। बौद्धों का प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ 'मञ्जु श्रीमूल कल्प' इसी शैली में लिखा ग्रन्थ है। शैली के आधार पर ऐतिहासिक तथ्यों को झुठलाया नहीं जा सकता। उसके 'कलियुग राज वृत्तान्त में इतनी ऐतिहासिक सामग्री भरी पड़ी है कि जिसकी अनदेखी करने के कारण इतिहास ठीक नहीं लिखा जा सका।

श्री वेंकटकेकम ने पुराणों को मान्यता दी और जहाँ पर बौद्ध ग्रन्थ या अन्य कोई ग्रन्थ पुराणों से विपरीत वर्णन देवे या तिथि बतावें, तो मान्यता पुराण में दी हुई तिथि या वर्णन को ही देना चाहिये, यह मत प्रगट किया।

श्री वेंकटकेलम ने पाश्चात्य ग्रीक व रोमन ऐतिहासिक साहित्य का भी अध्ययन किया और सर विलियम जोन्स पर केवल यही आक्षेप नहीं कि उनका पुराण सम्बन्धी ज्ञान उथला है बल्कि उन्होंने जान-बूझकर भारत के इतिहास को झूँठा दिखाने का षड़यन्त्र रचा और उन्होंने "Plot on Indian Chronology" 'भारतीय काल-गणना के साथ षडयन्त्र' नामक पुस्तक अंग्रेजी में लिखी।

जोन्स की पहली तालिका का पुराण से मुकाबला—

क्र.	वंश का नाम	राजा जोन्स की	राजा पुराण की	राज्यकाल जोन्स	राज्यकाल पुराण का	ईसा संवत् जोन्स की गणना से	ईसा संवत् पुराण की गणना से
१.	ब्रहदथ वंश	२०	२२	१००० वर्ष	१००६ वर्ष	३१०१ से २१००ई.पू.	३१३८ से २१३२ ई.पू.
२.	प्रद्योत वंश	५	५	१३८ वर्ष	१३८ वर्ष	२१०० से १८६२ तक	२१३२ से १८४४ तक
३.	शैशुनाग वंश	१०	१०	३६० वर्ष	३६० वर्ष	१८६२ से १६०२ तक	१८९४ से १६३४ तक
४.	नन्द वंश	१	९	१०० वर्ष	१०० वर्ष	१६०२ से १५०२ तक	१६३४ से १५३४ तक

क्र.	वंश का नाम	राजा जोन्स की	राजा पुराण की	राज्यकाल जोन्स	राज्यकाल पुराण का	ईसा संवत् जोन्स की गणना से	ईसा संवत् पुराण की गणना से
५.	मौर्य वंश	१०	१२	१३७ वर्ष	३१६ वर्ष	१५०२ से १३६५ तक	१५३४ से १२१८ तक
६.	शुङ्ग वंश	१०	१०	११२ वर्ष	३०० वर्ष	१३६५ से १२५३ तक	१२१८ से ९१८ तक
७.	कण्व वंश	४	४	३४५ वर्ष	८५ वर्ष	१२५३ से ९०८ तक	९१८ से ८३३ तक
८.	आंध्र वंश	३०	३२	४५६ वर्ष	५०६ वर्ष	९०८ से ४५२ ई. पू. तक	८३३ से ३२७ ई. पू. तक

श्री वेंकटकेलम लिखते हैं :—

(१) सर विलियम जोन्स पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने संड्रोकोट्टस को चन्द्रगुप्त मौर्य बताया और वह भी पुराणों के आधार पर तब उनको पुराणों की ठीक प्रकार से छानबीन करना चाहिये थी, लेकिन उन्होंने सिवाय भागवत पुराण के किसी अन्य पुराण को देखा भी नहीं।

(२) सर विलियम जोन्स को यह अच्छी प्रकार से मालूम था कि कलियुग का प्रारम्भ ३१०२ ईसा पूर्व में हुआ। वह स्वयं अपनी पुस्तक 'Works of William Jones Volume IV 1807' के पृष्ठ ४२ पर लिखते हैं कि "सब भारतीय ज्योतिष शास्त्री इस बात में एक मत है कि १. १. १७९० को ४८९१ कलि संवत् था।" वह यह भी जानते थे कि महाभारत युद्ध कलियुग के प्रारम्भ होने से ३६ वर्ष पूर्व हुआ था और भागवत पुराण में वंशावलियां महाभारत युद्ध से अर्थात् ३१३८ ईसा पूर्व से दी हैं, परन्तु वह जान बूझकर काल-गणना ३१०१ ईसा पूर्व से प्रारम्भ करते हैं।

(३) सर विलियम जोन्स को यह भी मालूम था कि ब्रहद्रथ वंश में

२२ राजा हुये न कि २० राजा, और राज्यकाल पुराण में १००६ वर्ष दिया था, न कि १००० वर्ष, परन्तु वह दोनों अशुद्धियां जान-बूझकर करते हैं।

(४) प्रद्योत वंश के बारे में सर जोन्स पुनः बहक जाते हैं और भागवत पुराण को न पढ़, लिखने लगते हैं कि प्रद्योत वंश का प्रारम्भ बुद्ध भगवान के जन्म से २ वर्ष पहले हुआ और दूसरी तालिका बना डालते हैं। यदि पुराण ठीक पढ़ा होता तो उन्हें मालूम पड़ जाता है कि प्रद्योत वंश के काल में बुद्ध भगवान पैदा ही नहीं हो सकते थे। उनकी आयु केवल ८० वर्ष हुई और वह शैशुनाग वंश के चौथे, पांचवें व छटे राजाओं के काल में रहे। अर्थात् राजा क्षत्रौजा (खेमजीत) के काल में जन्मे, बिम्बिसार के काल में धर्म प्रचार कर रहे थे और अजातशत्रु के काल में ८० वर्ष की आयु में निर्वाण को प्राप्त हुये। कोई भी पुराण बुद्ध भगवान को प्रद्योत वंश के काल में या २१०० ईसा पूर्व० के आस-पास नहीं बताता है। शैशुनाग वंश का काल १९९४ ईसा पूर्व से १६३४ ईसा पूर्व तक रहा। और १६३४ ईसा पूर्व में महापद्म नन्द सिंहासन पर बैठता है।

(५) भागवत पुराण स्पष्ट रूप से लिखता है कि ९ नन्द हुये और न मालूम वह कैसे समझ लेते हैं कि नन्द राजा एक ही हुये। इसे क्या कहा जावे, कि पुराणों के बारे में उनका ज्ञान कैसा था।

(६) इसी मौर्य वंश में सर जोन्स १२ राजाओं के स्थान पर १० राजा ही बताते हैं। अन्तिम दो राजा (११) शतधनु व (१२) बृहद्रथ हुये। और मौर्य वंश का प्रारम्भ १५३४ ईसा पूर्व हुआ न कि १५०२ ईसा पूर्व में। ऐसा ही पुराणों के अनुसार गणना से होता है। जोन्स को यहाँ कठिनाई आई वहाँ भागवत-पुराण के अतिरिक्त उन्हें दूसरे पुराण देखने चाहिये थे। कुछ पुराणों में जो हस्तलिखित मिलते थे। ९ नन्द-राजाओं का काल १०० वर्ष दिया है। मोर्यों के सम्बन्ध में भी मत्स्य पुराण के तमिल संस्करण में, तथा 'कलियुग राज्य वृत्तान्त' में १२ राजा ही दिये हैं और उनका राज्य-काल ३१६ वर्ष दिया है। न कि १३७ वर्ष, जो जोन्स ने दिखाया है।

(७) शंग वंश १२१८ ईसा पूर्व में प्रारम्भ होता है और ३०० वर्ष तक चला, न कि ११२ वर्ष, जैसा जोन्स ने दिखाया है।

(८) फिर कण्व वंश आता है जो ६१८ ईसा पूर्व में प्रारम्भ होता है। उसका राज्यकाल सभी पुराणों (केवल भागवत पुराण छोड़कर) में ८५ वर्ष दिया है। केवल भागवत पुराण ही इस वंश का राज्यकाल ३४५ वर्ष बताता है। इसमें केवल ४ राजा हुये। जोन्स को यह अशुद्धि दूसरे पुराण देखकर ठीक कर लेनी चाहिये थी, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। यह भागवत पुराण उतारने में अशुद्धि हो गई क्योंकि सब ही पुराण महापद्मनन्द के राज्यारोहण से आंध्र वंश के प्रारम्भ तक ८३६ वर्ष का समय बताते हैं।

पुराणों की प्रामाणिकता का आन्तरिक प्रमाण उनकी खुद जांच :—

सभी पुराण जिनमें भागवत पुराण भी शामिल है कहते हैं कि परीक्षित के जन्म से महापद्म के सिंहासन पर बैठने तक १५०१ वर्ष हुये। और महापद्म के राज सिंहासन पर बैठने से आन्ध्र वंश के प्रारम्भ तक ८३६ वर्ष हुये। इन दोनों काल गणनाओं की पुष्टि सप्त-ऋषियों की स्थिति को देखकर की गई।

महाभारत युद्ध के समय जब अभिमन्यु मारा गया है तब परीक्षित माता के गर्भ में था। उसका जन्म युधिष्ठिर के राज्य सिंहासन पर बैठने के बाद हुआ।

पुराणों के अनुसार		सर जोन्स के अनुसार	
वंश के नाम	**राज्यकाल**	**वंश के नाम**	**राज्यकाल**
ब्रहद्रथ वंश	१००६ वर्ष	ब्रहद्रथ वंश	१००० वर्ष
प्रद्योत वंश	१३८ ,,	प्रद्योत वंश	१३८ ,,
शैशुनाग वंश	३६० ,,	शैशुनाग वंश	३६० ,,
महापद्म के बैठने तक		महापद्म के राजा बनने तक	
	१५०४		१४९८

यहाँ तक राज्य-काल लगभग ठीक लिये गये इसलिये १५०० वर्ष के करीब अन्तर आता है। पर संवत् में काफी अन्तर आ गया तो भी जोन्स ने यह गणना फिर छोड़ दी।

अब दूसरी जाँच लें :—

पुराणों के अनुसार		जोन्स के अनुसार	
वंश का नाम	**राज्यकाल**	**वंश का नाम**	**राज्यकाल**
महापद्म नन्द से नन्द वंश काल	१०० वर्ष	नन्द वंश	१०० वर्ष
मौर्य वंश	३१६ ,,	मौर्य वंश	१३७ ,,
शुंग वंश	३०० ,,	शुंग वंश	११२ ,,
कण्व वंश	८५ ,,	कण्व वंश	३४५ ,,
आन्ध्र वंश के प्रारम्भ तक		आन्ध्र वंश के प्रारम्भ तक	
	८०१ वर्ष		६९४ वर्ष

सभी पुराणों में महापद्मनन्द के राज सिंहासन से आन्ध्र वंश के प्रारम्भ तक के काल को ८३६ वर्ष बताया है यदि जोन्स ने मौर्य वंश व शुंग वंश का काल पुराण अनुसार लिया होता तो कण्व वंश की अशुद्धि फौरन मालूम हो गई होती, उन्होंने यह जाँच नहीं की। कण्व वंश का बहुत बढ़ा-चढ़ाकर काल लेने पर भी ६९४ वर्ष ही आये यह भी नहीं देखा।

पुराणों के अनुसार गणना करने पर ८०१ वर्ष आये। ३५ वर्ष का अन्तर बहुत अन्तर समझा गया अतः पुराणों के रचेताओं ने उसका कारण ढूंढ़ा।

'कलियुग राज्य वृत्तान्त'—जिस पर बहुत आक्षेप हैं। इसका कारण देता है, कि आन्ध्र वंश में ३२ राजा हुये, पर दो राजाओं का राज्यकाल इस ८३६ वर्ष में मिला दिया गया अतः सब पुराण आन्ध्र वंश में ३० राजा

बताकर उनका राज्यकाल ४६० वर्ष बताते हैं। (पर जोन्स ने उन ३० राजाओं का राज्य ४६० वर्ष न लिखकर ४५६ वर्ष ही लिखा। कैसी विचित्र लेखन-शक्ति है।)

'कलियुग राज्य वृत्तान्त'—अकेला पुराण है जो महापद्म नन्द के राजसिंहासन बैठने से कण्व वंश के अन्त तक का काल ८०० वर्ष देता है। और फिर आन्ध्र वंश के ३० के स्थान पर ३२ राजाओं का राज्य-काल (४६०+३६)=४९६ वर्ष देता है। फिर कहता है कि सप्त-ऋषियों की स्थिति को देखकर यह मालूम हुआ कि राजाओं के राज्यकाल लगाने में १० वर्ष की भूल हुई है इसलिये आन्ध्र वंश के ३२ राजाओं का राज्यकाल ४९६+१०=५०६ वर्ष रख लिया गया।

श्री कोटा वेंकटचेलम, इन सभी कारणों से पुराणों को उनका उचित स्थान देने पर बल देते हैं। पुराणों में दी हुई काल गणना व वंशावलियां हर रूप से विश्वासनीय सिद्ध हुई हैं।

जोन्स द्वारा प्रतिपादित भारयीय इतिहास की आधार-शिला को चुनौती :

श्री कोटा वेंकटाचेलम सर विलियम जोन्स पर अब अपना प्रहार ग्रीक इतिहासकारों द्वारा दिये तथ्यों को सामने रख जारी रखते हैं और चुनौती देते हैं कि संड्रोकोट्टस कभी भी चन्द्रगुप्त मौर्य नहीं हो सकता।

वह लिखते हैं कि जोन्समानते हैं कि चन्द्रभिज,या चन्द्रश्री, या चन्द्रमस, आन्ध्र वंश का अन्तिम राजा था जिसकी मृत्यु उनकी गणना अनुसार ४५२ ईसा पूर्व और पुराणों की गणना अनुसार ३२७ ईसा० पूर्व हुई। यह चन्द्रमस राजा का नाम,ग्रीक इतिहासकारों के दिये नाम Xandrammes राजा के नाम से बिल्कुल मिलता है। जो ग्रीक इतिहासकार अलकजेंडर के साथ आये थे वह बताते हैं कि संड्रोकोट्टस ने Xandrammes को मारकर सिंहासन प्राप्त किया, पुराण यह बताते हैं कि गुप्त वंश के चन्द्रगुप्त ने चन्द्रमस व उसके अल्प वय पुत्र पुलोमी का वधकर राज्य प्राप्त किया था और पाटली पुत्र को राजधानी बनाया, क्योंकि गिरिव्रज उसके अधिकार में नहीं आ सका था। इस राजधानी बदलने का विशेष रूप से वर्णन है।

प्रोफेसर रेपसन ने अपनी पुस्तक Cambridge History of India Vol I पृष्ठ ४६९-४७० पर यह बात मानी है कि Xandrammes और 'चन्द्रमस' एक ही व्यक्ति मालूम पड़ते हैं, पर जोन्स को यह बात नहीं खटकी। क्यों ? क्या इस चन्द्रगुप्त का नाम संड्रोकोट्टस से ध्वनि में नहीं मिलता था ? असम्भव इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त मौर्य ने तो पुराणों अनुसार १५३४ ईसा पूर्व में राज्य छीना था, और इस चन्द्रगुप्त ने जो गुप्त वंश का था, चन्द्रमस और उसके पुत्र को मारकर राज्य लिया था तथा अलकजेंडर के आक्रमण के कुछ ही दिनों बाद सैलूकस नैकटोर का भी राज्य छीनकर लिया था और वह ग्रीक इतिहासज्ञों के वर्णन अनुसार संड्रोकोट्टस था। फिर जोन्स ने इस गुप्त वंश के चन्द्रगुप्त को संड्रोकोट्टस क्यों नहीं माना ?

जोन्स के इस व्यवहार के बारे में जब विचार करते हैं तो कई कारण सामने आते हैं :—

(१) हो सकता है कि सर विलियम जोन्स को गुप्त वंश के चन्द्रगुप्त का ज्ञान ही न हुआ हो क्योंकि भागवत पुराण में गुप्त या आंध्रभृत्य (जो गुप्त वंश का दूसरा नाम था) वंश का वर्णन नहीं है, और हो सकता है कि जोन्स ने दूसरा कोई पुराण देखा ही न हो।

(२) और यह भी हो सकता है कि सर विलियम जोन्स को उनकी २८-२-१७९३ की घोषणा कि संड्रोकोट्टस=चन्द्रगुप्त मौर्य है के बाद वह यदि इतनी शीघ्र २७-४-१७९४ को संसार से विदा न हो गये होते, तो अगर अन्य कोई व्यक्ति उनको दूसरे चन्द्रगुप्त के अस्तित्व का वर्णन बताता, तो वह अपनी गलती सुधार लेते।

(३) पर इसकी भी अधिक सम्भावना है कि वह भारत की प्राचीनता को किसी भी प्रकार स्वीकार करने को तैयार न थे और इसलिये दूसरे चन्द्रगुप्त की जानकारी होते हुए भी जो ग्रीक इतिहासकारों की सब ही शर्तों को पूरा करता था, उन्होंने वारैन हैसटिंग गवर्नर-जनरल से मशवरा करके, चन्द्रगुप्त मौर्य का नाम संड्रोकोट्टस से जोड़ा होवे और

जान-बूझकर Xandrammes व चन्द्रमिस की नामों की एकरूपता पर चुप्पी साधी होवे।

भारतीय इतिहास की आधार-शिला पर कठिन प्रहार—करते हुये आगे कहा गया है कि चन्द्रगुप्त और संड्रोकोट्टस, तथा पाटलीपुत्र और पालीब्रोथ्या के नामों की समान ध्वनि के अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं मिलता कि चन्द्रगुप्त मौर्य व संड्रोकोट्टस एक ही व्यक्ति थे। इस आधार-शिला के प्रतिपादन करने वाले, ग्रीक-प्राचीन इतिहासकारों द्वारा विभिन्न श्रेणी के दिये हुये राजाओं के नाम को, भारतीय राजाओं के नाम से मिलाने का प्रयत्न ही नहीं करते। ग्रीक-प्राचीन-इतिहासकारों ने :—

(i) जो राजा मारा गया और उसका राज्य छीना गया— उसका नाम Xandrammes (सन्द्रमस), Andrammes (आण्ड्रोमस) या Agrammes (अग्रोमस) दिया है।

(ii) जिसने मारकर राज्य छीना, उस राजा का नाम संड्रोकोट्टस या आन्ड्रोकोट्टस दिया है।

(iii) और राज्य छीनने वाले राजा के पुत्र का नाम अमित्रोकेटस या सान्ड्रोसाइप्तस दिया है।

अब यदि राज्य छीनने वाले राजा संड्रोकोट्टस को चन्द्रगुप्त मौर्य मान लिया जावे, तो मारे गये राजा का नाम 'नन्द' है वह कोई भी 'नन्द' हो सकता है महापद्मनन्द या सुमाली नन्द या घनानन्द—उस 'नन्द' का नाम Xandrammes (सन्द्रमस) या आड्रोमस या अग्रोमस से ध्वनि में नहीं मिलता। या यह कहो किसी प्रकार नहीं मिलते।

इसी प्रकार चन्द्रगुप्त मौर्य का पुत्र बिन्दुसार था उसका नाम संड्रोकोट्टस के पुत्र अमित्रोकेटस या सान्ड्रोसाइप्तस से नहीं मेल खाता।

तो सभी पाश्चात्य-भारतीय इतिहासज्ञ 'नन्द' को Xandrammes (सन्द्रमस) से एकरूप करते रहे हैं यद्यपि उनको स्वयं अपनी बात पर विश्वास नहीं था। इस अविश्वास को स्मिथ बहुत अस्पष्ट रूप में यह कह

कर प्रगट करते हैं "कि गंगारिदाई व आसियों के राजा का नाम ग्रीक लोगों ने भारतीय शब्दों की ध्वनि से अपरिचित होने के कारण Xandrammes (सन्द्रमस) या (अग्रमस) दिया है वह निश्चित रूप से भारतीय परम्परा में 'नन्द' कहा जाने वाला ही राजा होगा" इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि पाश्चात्य इतिहासकारों की इस असम्भव कल्पना को सत्य सिद्ध करने को कि संड्रोकोट्टस चन्द्रगुप्त मौर्य है, भारतीयों को यह मानना ही होगा Xandrammes (सन्द्रमस) नन्द था।

इससे विचित्र स्पष्टीकरण मैक्समूलर ने दिया। वह 'शब्द शास्त्रज्ञ' थे अतः मानते हैं कि ग्रीक इतिहासकारों का दिया नाम Xandrammes (सन्द्रमस) और भारतीय नाम 'नन्द' एक नहीं हो सकते। परन्तु संड्रोकोट्टस और चन्द्रगुप्त मौर्य एक व्यक्ति हैं, इस कल्पना को अपना कठोर समर्थन जुटाने के उत्साह में, यह कहता है "यद्यपि ग्रीक इतिहासज्ञ Xandrammes (सन्द्रमस) को उस अन्तिम राजा का नाम बताते हैं जिसको संड्रोकोट्टस ने जीतकर राज्य पाया था, पर यदि यह माना जावे कि यह दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हैं तो बात ठीक बन जाती है। क्योंकि चन्द्रगुप्त को चन्द्र कहा जा सकता है, और चन्द्रमस संस्कृत में चन्द्र के लिये आता है और चन्द्रमस व Xandrammes (सन्द्रमस) में ध्वनि की समानता है।" इसका अर्थ यह है कि मैक्समूलर सन्ड्रोकोट्टस और चन्द्रगुप्त को एक व्यक्ति सिद्ध करने के लिये, ग्रीक इतिहासकारों के दिये नाम Xandrammes (सन्द्रमस) को बिल्कुल ही अलग राजा मानने को तैयार न थे।

मैक्समूलर ने एक और विचार प्रतिपादित किया कि सन्ड्रोकोट्टस के पुत्र का नाम जो ग्रीक इतिहासकारों ने 'अमित्रकेटस या सान्द्रोसाइप्तस दिया है, उसको भी अमान्य करते हुये यह कहा है कि यह नाम भी सन्ड्रोकोट्टस के ही हैं।

जोन्स द्वारा प्रतिपादित भारतीय इतिहास की आधार शिला :—

कितनी प्रामाणिक है कि मैक्समूलर के तमाम स्पष्टीकरण, उसको पक्का बनाने में नहीं, उसको गलत सिद्ध करने में उद्धरित किये जा सकते

हैं। यूनानी (ग्रीक) ग्रंथों ने सिकन्दर के समकालिक मगध राजा का नाम Xandrammes या Andrammes लिखा है जो चन्द्रमस था अथवा आन्ध्र वंश के होने के कारण ग्रीक इतिहासकारों ने उसे 'आण्ड्रोमस' भी कहा है। यह 'अण्ड्र' शब्द आन्ध्र का अपभ्रंश है। इसी प्रकार चन्द्रगुप्त 'गुप्त वंशीय' क्योंकि 'आंध्रभृत्य वंश' का था इसीलिये उसका नाम सन्ड्रो-कोट्टस के साथ 'आण्ड्रोकोट्टस' भी दिया है। यह मत डा० त्रिवेद का भी है।

महान् सन्ड्रोकोट्टस के महान् कार्यों का वर्णन ग्रीक इतिहासकार करते हैं। उनके अनुसार सन्ड्रोकोट्टस भारतीय इतिहास में सबसे बड़ा सम्राट हुआ। उसने एक विशाल सेना की सहायता से पूरा भारत जीत लिया था। यह वर्णन भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य के वर्णन से मेल नहीं खाता। चन्द्रगुप्त मौर्य कोई बड़ा विजेता नहीं था, वह तो चाणक्य या कौटिल्य की सहायता से राज्य सिंहासन प्राप्त कर सका था। चन्द्रगुप्त मौर्य एक साधारण राजा से कुछ ही अधिक मान्यता प्राप्त नरेश था। उसके पड़ौसी राज्य जैसे कौशल, विदेह, काशी आदि उसके राज्य के अंग या आधीन न थे, उनका सहयोग उसे प्राप्त था। हिन्दू व बौद्ध दोनों ही इतिहासकार या लेखक ऊपर लिखी बात में एक मत हैं। यद्यपि इस बात में भिन्न-भिन्न विचार रखते हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य क्षत्रिय था या नहीं। मैक्समूलर इस मतभेद का कारण यह देता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य क्योंकि महान बौद्ध सम्राट अशोक का पितामह था, इसलिये ब्राह्मण लेखक उसको बिना कारण नीचा बताते हैं और बौद्ध लेखकों ने उसे बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बताया है। लेकिन यह कारण केवल काल्पनिक है। राक्षस, जो अन्तिम नन्द का विश्वास पास मंत्री था, उसने पहले अपने को चन्द्रगुप्त से दूर रखा और फिर चाणक्य के प्रयत्नों से चन्द्रगुप्त का मंत्री बना, तथा ब्राह्मण चाणक्य ने जो चन्द्रगुप्त की सहायता की, उससे सिद्ध होता है कि 'चन्द्रगुप्त मौर्य ब्राह्मण विरोधी न था। यहाँ तक कि उस 'प्रियदर्शी' राजा का जो शिला-लेख है उससे भी यह सिद्ध नहीं होता कि वह राजा ब्राह्मण-द्रोही हो क्योंकि उस शिला-लेख में ब्राह्मणों के प्रति बड़ा आदर दिखाया गया है।

सन्ड्रोकोट्टस की राजधानी पालीब्रूथ्या :—

मैगस्थानीज के अनुसार पालीब्रूथ्या गंगा व इरनोबोअस के संगम पर गंगा व जमुना के संगम से ४२५ मील की दूरी पर स्थित था। इस नगर का परकोटा लकड़ी का बना था (जैसा कि मैककिरन डिल ने अपनी पुस्तक पृष्ठ २१२ के नीचे नोट में दिया है।) पटना में सन् १८७६ ई० में एक सार्वजनिक तालाब बनाने के लिये पृथ्वी की सतह से १२ से १५ फीट गहरी खुदाई की गई तब लकड़ी के परकोटे के अंश निकले थे। शायद इसी परकोटे का मैगस्थानीजने वर्णन किया होगा। पटना और पालीब्रोथ्या एक नगर नहीं हो सकते, इस मत को रखने वालों का सबसे बड़ा आक्षेप यह था कि पटना गंगा में किसी नदी के संगम पर नहीं बसा है। यह आक्षेप इस खोज से दूर हो गया कि सोन नदी ने १३७९ ई० में अपनी धारा बदली, पहिले यह पटना के पास ही गंगा में मिलती थी और ग्रीक लोगों ने इस सोन को ही इरनोबोअस कहा था। आज सभी इतिहासकार इस मत के हैं कि ग्रीक लोगों का पालीब्रूथ्या, वही नगर है जो कुसुमपुर, पुष्पपुर और बाद में पाटलीपुत्र कहलाया, और आज पटना नगर है।

अब प्रश्न उठता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य की राजधानी पाटलीपुत्र थी या नहीं। इसका निर्णय करने के लिये पुराण ही एकमात्र स्रोत हैं। सभी पुराण इस बात में एक मत हैं कि मगध राज्य की स्थापना उसकी राजधानी गिरिव्रज (या जिसे अब राजगृह कहते हैं) ही रही। महाभारत युद्ध के बाद जो आठ वंशों ने मगध पर राज्य किया, अर्थात् आन्ध्र वंश के अन्त तक सभी ने गिरिव्रज को ही राजधानी रखा। इन वंशों में किसी की राजधानी पाटलीपुत्र नहीं रही। सभी पुराने पुराण आन्ध्र वंश पर समाप्त होते हैं जब मगध का राज्य ही समाप्त हो जाता है। मौर्य वंश आन्ध्र वंश से पहिले आता है। अतः उसकी राजधानी गिरिव्रज थी। चाणक्य ने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्थ शास्त्र' में राजधानी के किसी लकड़ी के परकोटे का जिक्र नहीं किया है, बल्कि पत्थर की दीवार का वर्णन किया है।

आन्ध्र वंश की समाप्ति पर जैसा पुराणों की शैली है वह भविष्यवाणी करते हैं कि आगे सात राजा 'आन्ध्र भृत्य' वंश में होवेंगे जो गुप्त वंश कहलायेगा।

गुप्त वंश का चन्द्रगुप्त व उसका पुत्र समुद्रगुप्त, पुराणों अनुसार, आन्ध्र के अन्तिम सम्राट चन्द्रश्री या चन्द्रमस के दरबार में सेवा करते थे, वह स्वयं त्रिहुट, अवध आदि के सामन्त भी थे। चन्द्रगुप्त ने सम्राट चन्द्रश्री व उसके अलभ्य पुत्र पुलोमी का वध किया और राज्य का कुछ भाग कुसुमपुर सहित अपने राज्य में मिला लिया। चन्द्रगुप्त पूरे साम्राज्य पर अधिकार नहीं कर सका। गिरिव्रज तथा साम्राज्य का कुछ भाग्य उसके अधिकार में नहीं आया, वहाँ जो गवर्नर थे उन्होंने अधिकार कर लिया। मगध साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। चन्द्रगुप्त ने पाटलीपुत्र को राजधानी बना नया राज्य स्थापित किया। सम्भवतः यही कारण है कि पुराण उस काल के कुछ राज्यों का नाम दे. वृत्तान्त समाप्त कर देते हैं। समुद्रगुप्त ने इस राज्य को बढ़ाया और शक्तिशाली सम्राट, पुराणों अनुसार, बना। उसे सूर्यवंशी होने का गर्व था, अतः उसका राज्यारोहण उत्सव अयोध्या में हुआ और राजधानी पाटलीपुत्र रखी।

पुराणों में कहीं संकेत मात्र में भी पाटलीपुत्र का वर्णन मौर्य वंश की राजधानी के रूप में नहीं आया है। पाश्चात्य इतिहासकारों ने यह बात 'मुद्रा राक्षस' से ली। इस नाटक का रचियता इस घटना के बहुत काल पश्चात हुआ है अतः उसे इस बात का ज्ञान न होना कि चन्द्रगुप्त मौर्य की राजधानी पाटलीपुत्र नहीं थी अधिक सम्भव लगता है। उसके काल में पाटलीपुत्र ही महत्वपूर्ण नगर होगा और इसलिये न्यायाधीश तेलंग के अनुसार उसने अपने नाटक का कथानक पुराण से लेकर उसका घटना चक्र पाटलीपुत्र में दिखाया होगा। स्मिथ स्वयं अपने ग्रन्थ में मानते हैं कि 'मुद्रा राक्षण' का लेखक ईसा के बाद पांचवी शताब्दी का है और नाटककार की कल्पनायें नाटक के साथ जुड़ी रहती हैं। अतः हर घटना जो नाटक में दिखाई जाती है स य ऐतिहासिक घटना मानना ठीक नहीं होता।

ग्रीक प्राचीन इतिहासकार पालीब्रूथ्या के नागरिकों को भारत में सर्वश्रेष्ठ होना, तथा राजा सन्ड्रोकोट्टस का 'विशेष उपाधि' पालीब्रूथ्या सम्बन्धी नाम के साथ लगाना बताते हैं। इस बिन्दु को भी जब परखते हैं तब चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में यह भी सिद्ध नहीं हो पाता कि वह किसी

उच्च वंश का हो। जिस पर वह गर्व कर सके। और अपने नाम के साथ 'सन्ड्रोकोट्टस' के समान कोई उपाधि लगाता होवे। चन्द्रगुप्त की माता 'मुरा' किसी उच्च जाति की न थी। अतः वंश का गर्व, या किसी उपाधि का धारण करना इस चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में नहीं मिलता। उसे लोग शूद्र कहते हैं।

लेकिन गुप्त वंश के राजाओं में वंश का गर्व, कि वह सूर्यवंशी थे, भगवान राम से नाता जोड़ते थे, तथा समुद्रगुप्त ने अपना राजतिलक अयोध्या कराया, यह भाव विशेष रूप से मिलता है। गुप्त राजा अपने नाम के साथ 'आदित्य' (जिसका अर्थ है 'सूर्य') लगाकर कोई न कोई उपाधि धारण करते थे जो उनका उपनाम कहलाता था। पाटलीपुत्र के लोगभी अधिकतर सूर्य-वंशी थे इसलिये सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। मैगस्थानीज ने उनको 'पारसी या आसी' क्यों कहा समझ में नहीं आता। सम्भवतः वह यज्ञ करते होगें, अग्नि की पूजा, इसलिये आसी या पारसी कहा हो। चन्द्रगुप्त (गुप्त वंशीय) ने लच्छिवी क्षत्रियों के जो आठ जनपद थे, उनको जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था। यह लच्छिवी क्षत्रिय सब सूर्य-वंशी थे अतः चन्द्रगुप्त के राज्य में सूर्यवंशियों की बहुतायत थी, उसका विवाह भी लच्छिवी—राजकन्या कुमार देवी से हुआ था जैसा कि कुछ मुद्राओं से पता चलता है। इन लच्छिवियों की महत्ता गौतम बुद्ध के काल से ही चली आई थी और उनकी राजधानी वैशाली, भारत के प्रसिद्ध नगरों में से एक थी। अतः गुप्तों का वंश गौरव स्वयं सिद्ध है और पाटलीपुत्र स्वयं एक गौरवपूर्ण नगर था। यह बात चन्द्रगुप्त मौर्य पर नहीं लागू होती।

यदि सन्ड्रोकोट्टस चन्द्रगुप्त मौर्य था तो मैगस्थानीज व कौटिल्य के वर्णनों में भेद क्यों ?

मैगस्थानीज ने सन्ड्रोकोट्टस के राज्यकाल के राजनीतिक-सामाजिक जीवन का वर्णन किया है और इसी प्रकार कौटिल्य ने भी अपने 'अर्थ-शास्त्र' में चन्द्रगुप्त मौर्य के काल का राजनीतिक, सामाजिक जीवन का वृत्तान्त दिया है तो यदि सन्ड्रोकोट्टस व चन्द्रगुप्त मौर्य एक ही राजा

हैं तो दोनों वर्णनों में मूल रूप में समानता मिलनी चाहिये, पर समानता ढूंढ़ने के सभी प्रयत्न असफल सिद्ध हुये। राजधानी के परकोटे के बारे में एक लकड़ी का परकोटा बताता है दूसरा पत्थर की दीवार का। चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' में 'सामुन्द्रिक बेड़े' में महानायक का वर्णन नहीं है और न इस बारे में कोई नियम बताये गये हैं कि विदेशियों को राज्य सीमा तक पार कराने के लिये तथा उनका सामान देखने की, या उनकी मृत्यु पर उनकी सम्पत्ति का किस प्रकार, किन नियमों से व्यवस्था होती थी, अर्थ-शास्त्र' में नहीं दिया है जिनका वर्णन मैगस्थानीज ने किया है। इसी प्रकार 'अर्थशास्त्र' में दिये व्यापारिक व औद्योगिक संस्थाओं का वर्णन मैगस्थानीज के लेखों में नहीं मिलता। अर्थशास्त्र रसायनिक-विज्ञान (Alchemy) से परिचित है, पर मैगस्थानीज के वर्णनों में इसका नाम नहीं।

प्रोफेसर कीथ का कहना है कि चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्य बहुत सीमित मालूम होता है, उसने कुल भारत नहीं जीता था, वह सम्राट भी न था, वह कौटिल्य की कुशलता के कारण राजा बना, और केवल 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण करता था, जो साधारण से कुछ ही बढ़कर है। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' ऐसे ही छोटे राज्य के लिये लिखा था।

भारतीय वर्णनों व ग्रीक वर्णनों में महत्वपूर्ण बातों का न होना, भी इसका प्रमाण है कि दोनों वर्णन भिन्न-भिन्न काल से सम्बन्ध रखते हैं। सन्ड्रोकोट्टस और चन्द्रगुप्त मौर्य एक व्यक्ति नहीं हैं :—

(१) यदि सन्ड्रोकोट्टस चन्द्रगुप्त मौर्य होता तो राजदूत मैगस्था-नीज चाणक्य से कैसे अपरिचित हो सकता था, और उसका कुछ न कुछ वर्णन अपने लेखों में करना कैसे भूल सकता था। इसी प्रकार चाणक्य मैगस्थानीज व ग्रीकों का कुछ तो वर्णन देता। यह दोनों प्रकार का वर्णन न होना सिद्ध करता है कि सेन्ड्रोकोट्टस, चन्द्रगुप्त मौर्य से भिन्न शासक था।

(२) सन्ड्रोकोट्टस यदि चन्द्रगुप्त मौर्य होता, तो ग्रीक राजदूत इस बात से कैसे अपरिचित रहता कि यह राज्य 'मगध राज्य'

कहलाता है। मगध राज्य शब्द ही मैस्थानीज के लेखों में नहीं है।

(३) चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में बौद्ध धर्म बहुत प्रचलित धर्म था, बौद्ध-विहार उस काल की विशेषता थे। परन्तु मैगस्थानीज न बौद्ध धर्म का जिक्र करता है न बौद्ध विहारों का। इस प्रकार वर्णन न होना तभी सम्भव है जब मैगस्थानीज चन्द्रगुप्त मौर्य नहीं, वह किसी अन्य राजा के काल में राजदूत रहा हो। यह बात डा० राय चौधरी व पाश्चात्य लेखक कोल ब्रुक ने भी मानी है।

(४) मौर्यकाल का साहित्य 'अर्थशास्त्र', 'कथा वस्तु', व्याकरण-महाभाष्य, वरुचि की कवितायें, यायति की कहानियां, 'यवकृति प्रियंगू' 'सुमनाउत्तरा' और वासवदत्त हैं। किसी में सिकन्दर, पोरस व मैगस्थानीज का वर्णन नहीं आता।

(५) सर विलियम जोन्स के अनुसार सिकन्दर का आक्रमण महापद्मनन्द के काल में हुआ, जिसका राज्य वियास नदी तक फैला हुआ था, सभी इतिहासज्ञ मानते हैं। नन्द बड़ा शक्तिशाली राजा हुआ, वह सिकन्दर के आक्रमण के समय चुप कैसे बैठ सकता था, जब कि सिकन्दर उसकी सीमा के अन्दर घुसता चला आता है।

(६) मौर्य वंश के काल में युग पुराण से मालूम होता है कि मौर्य वंशीय शालिशूक के समय में यवन राजा धर्ममीत ने आक्रमव किया था, परन्तु उसे पराजित होकर वापस लौटना पड़ा, फिर सिकन्दर के आक्रमण का वर्णन पुराणों में क्यों नहीं आया, शायद मौर्यकाल में यह हुआ ही नहीं।

अतः श्री कोटा वेंकटकेलम ने सन् १९८१ की 'Indian History Congress' से प्रार्थना की इन सब बातों को देखते हुये यह ठीकही रहेगा कि एक समिति विद्वानों की बना दी जाये जो जोन्स द्वारा प्रतिपादित

भारतीय इतिहास की आधार-शिला पर पुनः विचार करें—पर उनकी बात न सुनी गई और वही पूर्व स्थिति आज भी चली आ रही है।

इस सब तर्कों व प्रमाणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सन्ड्रोकोट्टस चन्द्रगुप्त मौर्य नहीं था और जोन्स की यह घोषणा जिसका अनुमोदन विलफोर्ड ने किया था तथा जिस पर मैक्समूलर ने अपनी अनुमति की मुहर लगाकर पक्का बना दिया था, वह गलत है और उसके कारण भारतीय इतिहास लेखन में बहुत बड़ा दोष आया तो भी यह प्रश्न रह जाता है कि सन्ड्रोकोट्टस कौन था ?

इस प्रश्न के उत्तर में दो नाम आते हैं कि सन्ड्रोकोट्टस गुप्त वंश का चन्द्रगुप्त था या समुद्रगुप्त।

'भारतीय इतिहास संकलन योजना' के आधीन जो पुस्तक 'क्या संड्रोकोट्टस चन्द्रगुप्त मौर्य था' उसके विद्वान लेखक श्रीराम साठे ने श्री कृष्णमाचारी का मत भी विस्तार से दिया है, उनका मत है कि सन्ड्रोकोट्टस का जो चित्र ग्रीक इतिहासकारों ने खींचा, उससे यही मालूम होता है सन्ड्रोकोट्टस गुप्त वंश का चन्द्रगुप्त नहीं, उसका पुत्र समुद्रगुप्त ही है, जिसके कारण उन्होंने निम्नलिखित दिये हैं :—

सन्ड्रोकोट्टस व समुद्रगुप्त की तुलना :—

श्री कृष्णमाचार्य ने अपने ग्रन्थ 'History of Classical Sanskrit Literature' के प्राक्कथन में लिखा है 'ग्रीक प्राचीन लेखकों ने जो राजाओं के भिन्न नाम दिये हैं वह तीन श्रेणी में बांटे जा सकते हैं। (१) मगध के उस पूर्व वंश के राजा का नाम जो सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व राज्य करता था। (२) उस राजा का नाम जिसने मगध के पूर्व वंश के राजा को मारकर स्वयं राज छीना हो और सिकन्दर के आक्रमण के समय वह पाटलीपुत्र में राज्य कर रहा था। (३) और उस राजा का नाम जिसने सैलूकस निकटोर से सन्धि की। इन तीन बातों का जब भारतीय इतिहास से मेल मिलाया जाता है तो (i) मालूम होता है कि आन्ध्र वंश का अन्तिम राजा चन्द्रश्री (चन्द्रमस) था (ii) उसको (अर्थात् चन्द्रश्री)

तथा उसके अल्पव्य पुत्र पुलोम को चन्द्रगुप्त ने अवसर पाकर मार डाला कि सम्राट चन्द्रश्री राजपाट छोड़ एकान्त जीवन बिताना चाहते थे और उन्होंने अपने अल्पव्य पुत्र पुलोम को राज सिंहासन दे चन्द्रगुप्त को उसका संरक्षक बना दिया था। (iii) तीसरे राजा समुद्रगुप्त आते हैं, जिन्होंने मलेच्छों व डाकुओं की सहायता से चन्द्रगुप्त को हटाकर राज्य प्राप्त किया और जो पाटलीपुत्र में 'शिला-अभिलेख' अनुसार शासन करता था, राजदूतों द्वारा विदेशी राजाओं की मान्यता प्राप्त करता था, जिसने पूरे भारतवर्ष को विजय कर लिया था और जिसकी राज्य सत्ता भारत की आज की सीमाओं से भी बहुत परे तक फैली थी, और जिसने अश्वमेध यज्ञ भी अपनी विजयों के फलस्वरूप रचाया था।

भारतीय साहित्य में आन्ध्र वंश के अन्त तक किसी विदेशी शक्ति या विदेशी राष्ट्र द्वारा भारत की सीमा में घुसकर राज्य करने का संकेत भी नहीं मिलता। अकेला एक राजा जिसको ग्रीक इतिहासकारों ने सन्ड्रोकोट्टस नाम दिया है और जो ग्रीक इतिहासकारों के वर्णनों से मेल खाता हो और जो सिकन्दर के आक्रमण के समय राज्य कर रहा हो, वह चन्द्रगुप्त गुप्तवंशीय मिलता है। पुराणों के अनुसार गुप्त वंशीय चन्द्रगुप्त ने विनाश की ओर जाते हुये आन्ध्र वंश के खण्डहरों पर एक शक्तिशाली राज्य महाभारत युद्ध से २८११ वर्ष बाद अर्थात् ३२८ ईसा पूर्व में स्थापित किया था पर हमारे इतिहासज्ञ महाप्रभुओं ने उसे ग्रीक इतिहासकारों का अशुद्ध प्रयोग करके ईसा पश्चात् (A. D.) में डाल दिया।

'कलियुग राज वृतान्त' जो भविष्य महापुराण का अंग है वह आन्ध्र वंश के अन्तिम दो राजाओं का, तथा गुप्त वंश के प्रारम्भ का विस्तार से वर्णन करता है। उसमें यह भी दिया है कि चन्द्रगुप्त अपने पुत्र कच से प्रेम करने लगा था जो समुद्रगुप्त का सौतेला भाई था, इसलिये समुद्रगुप्त ने मलेच्छों की सहायता से चन्द्रगुप्त व कच को मारकर सिंहासन प्राप्त किया। यह घटना तुरन्त ग्रीक इतिहासकारों ने जो सन्ड्रोकोट्टस के सम्बन्ध में कहा है उसकी याद दिला देती है। युवराज समुद्रगुप्त अपने पिता से क्यों कटे हुये थे, इसका कारण चन्द्रगुप्त का अपने दूसरे पुत्र 'कच' को अनुचित प्रोत्साहन देना रहा होगा। पुराण के इस वर्णन, कि चन्द्रगुप्त

के साथ ही 'कच' राज्य-शक्ति का उपभोग करते थे, यह वर्णन केवल चन्द्रगुप्त और उसके (द्वारा मनोनीत युवराज) पुत्र समुद्रगुप्त के बीच झगड़े का कारण ही नहीं बताता, बल्कि यह भी स्पष्ट करता है कि 'कच' की मुद्रायें कैसे चल निकलीं।

श्री कृष्णमाचार्य फिर आगे लिखते कि पुराण द्वारा दी हुई इन घटनाओं को सामने रख जब ग्रीक इतिहासकार प्लूटार्क का यह वर्णन पढ़ते हैं कि सन्ड्रोकोट्टस ने यह प्रयत्न किया था कि सिकन्दर से भेंटकर उसे प्रासी या पारसी राज्य पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहन दे, तो उसका अर्थ समझ में आता है कि यह अण्ड्रोकोट्टस कोई अन्य नहीं समुद्रगुप्त ही था। फिर जस्टिन ग्रीक इतिहासकार के अनुसार अण्ड्रोकोट्टस के इस स्वभाव के कारण कि वह बड़ा स्वाभिमानी था, सिकन्दर से मनमुटाव हो जाता है, फिर इसी अण्ड्रोकोट्टस ने मलेच्छों व डाकुओं (हूण आदि की सेना बनाकर) की सेना बना सिकन्दर के चले जाने पर उसके छोड़े अधिकारियों को भारत से खदेड़ दिया और सैल्यूकस को परास्त किया।

[यहाँ पर हम एम० पी० श्रीवास्तव एम० ए० विद्या० वाचस्पति व श्रीमती शारदा अग्रवाल द्वारा लिखित ग्रन्थ, प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला एवं दर्शन के चतुर्थ संस्करण के पृष्ठ ११६ का उद्धरण देते हैं कि सभी साक्ष्यों का निरूपण करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ३२३ ईसा पूर्व में सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उसके सेनापतियों में गृह-युद्ध हुआ होगा। इस युद्ध की समाप्ति ३२१ ईसा पूर्व में ट्रिपेरेडिसस की सन्धि द्वारा हुई, जिसके अनुसार सिकन्दर के सामाज्य का विभाजन कर दिया गया था। इस सन्धि में भारतीय प्रदेशों का उल्लेख नहीं है, अतः प्रतीत होता है कि ईसा पूर्व ३२१ से पहले ही भारतीय राज्य यूनानी प्रभाव से मुक्त हो चुके थे। और इस 'विजयी वीर' ने झेलम तक के पंजाब प्रदेश को स्वतन्त्र कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के उपरान्त ही पूरब में मगध-विजय के अभियान का प्रारम्भ किया।]

अतः श्री कृष्णमाचार्य का मत है कि यह अण्ड्रोकोट्टस या सन्ड्रोकोट्टस कोई और व्यक्ति न होकर पुराण का समुद्रगुप्त है जिसने मलेच्छों

की सेना द्वारा अपने पिता का राज्य प्राप्त किया और जिसको विजयों का वर्णन हरिषेण ने इलाहाबाद के 'अशोक स्तम्भ' पर किया है जिससे पुराणों का यह घोष सत्य सिद्ध होता है कि समुद्रगुप्त संसार का एक प्रभावशाली सम्राट हुआ, जिसका राज्य समुन्द्र से समुन्द्र तक फैला हुआ था और जिसको सीलोन (लंका) वेक्ट्रिया (फारिस) और असीरिया (सीरिया तक) भी 'कर' देते और उच्च शक्ति के रूप में आदर प्रगट करते थे। यह वही समुद्रगुप्त था जिसको विन्सेन्ट स्मिथ भारत का नेपोलियन कहते हैं और मैगस्थानीज जिसके राज दरबार में सैल्यूकसका दूत बनकर रहा और उसने इसी राजा को सन्ड्रोकोट्टस कहा था। समुद्रगुप्त सभी गुप्त वंशीय राजाओं के समान 'आदित्य' से अन्त होने वाली उपाधि को भी धारण करता था और 'अशोकादित्य' के रूप में जाना जाता था।

श्री कृष्णमाचार्य का एक मत और भी समुद्रगुप्त के सम्बन्ध में है। उसको हम अगले अध्याय में ले रहे हैं।

अध्याय–१०

(अशोक—महान)

भारत के इतिहास में अशोक को जो महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है वह सर्वविदित है । २१ फरवरी १९८१ ई० को 'अशोक के काल' पर जो गोष्ठी मद्रास में हुई उसमें के० राजाराम ने उद्घाटन करते हुये कहा था :—

'अशोक के इतिहास की विशेषता यह है कि उसने अपने बारे में प्राकृतिक पर्वतों की चट्टानों पर, तथा पत्थर के स्तम्भों पर अपने बारे में खुदे अभिलेख छोड़े हैं जिनसे हम उसके जीवन व विचारों का एक पूरा चित्र खींच सकते हैं। यह अभिलेख पाली व संस्कृत दोनों भाषाओं में है।

यह तो ठीक है कि हमें उन अभिलेखों से उसका जीवन का चित्र खींचने में सहायता मिलती है, पर यह नहीं बता सकते उसके पिता कौन थे, किस वंश का था, कब सिंहासन पर बैठा और कब उसकी मृत्यु हुई। क्योंकि अभिलेख इस बारे में कोई सूचना नहीं देते। वास्तव में यह अभिलेख यह भी नहीं बताते कि इन अभिलेखों को लिखाने वाले राजा का क्या नाम था। वह सब 'देवानाम् प्रिय' शब्द ही प्रयोग करते हैं। केवल एक छोटे शिला-लेख में 'अशोक' नाम आया है। हमारे देश में तीन अशोक हुये।

(१) एक अशोक—धर्म अशोक हुआ जो कनिष्क में तीसरी पीढ़ी पर आता है और कश्मीर के राजवंश 'गौड़' का था, उसका वर्णन 'राजतरंगणी' में आता है कि उसने पाप से मुक्त होने के लिये गौतम बुद्ध का चलाया धर्म स्वीकार किया और बहुत से मठों व विहारों का निर्माण कराया।

(२) दूसरा अशोक—अशोक वर्धन है जो पुराणों के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का पौत्र था।

(३) तीसरा अशोक—अशोक-आदित्य समुद्रगुप्त था जो गुप्त वंश के राजा चन्द्रगुप्त का पुत्र था, और यह समुद्रगुप्त स्मिथ के अनुसार भारत में भुला दिया गया। उसका नाम तक इतिहास में नहीं है और जो इतना प्रतापी व विजेता था कि स्मिथ ने उसे 'भारत का नेपोलियन' कहकर पुकारा, और जिसका वर्णन उसके जीवन-चरित्र लिखने वाले हरिषेण व 'कलियुग राज वृत्तान्त' ने किया है और जिसकी पुष्टि शिला अभिलेख व मुद्रायें करती हैं। यह शिला-अभिलेख व मुद्रायें भी अदृश्य हो गई थी, यूरोपियनों द्वारा खोज से प्रकाश में आईं।

प्रथम अशोक—कश्मीर का यह राजा बहुत हाल का है। कनिष्क ने चतुर्थ बौद्ध महासंगीत पुरष्कपुर में की थी, उससे पश्चात में इसका वर्णन आता है। अशोक महान ने तृतीय बौद्ध संगीत का आयोजन किया था, अतः यह महान अशोक नहीं हो सकता।

बौद्ध धर्म की दो शाखायें महायान व हीनयान दोनों ही अशोक के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत रखती हैं। भारत और सीलोन के बौद्ध साहित्य में भी इतना मतभेद है कि वंश के बारे में भी एक मत नहीं है। इनका मतभेद केवल आपस में ही नहीं बल्कि पुराणों से भी मत एक नहीं है।

महावंश जिसका अनुवाद 'टरनोर' ने किया है कहता है 'एक चाणक्य नाम का ब्राह्मण था वह किसी कारण घनानन्द, जो नौ भाइयों में सबसे छोटा था, से घृणा करने लगा, उसने राजा घनानन्द को मरवा दिया और मगध के सिंहासन पर चन्द्रगुप्त को, जो मौर्य वंश का राजकुमार था और जिसका सम्बन्ध शाक्य नस्ल से था, बिठाल दिया। चन्द्रगुप्त ने ३४ वर्ष राज्य किया, उसके पुत्र बिन्दुसार ने २८ वर्ष शासन किया बिन्दुसार के १६ पत्नियों से १०१ पुत्र थे, उसमें अशोक तीसरे स्थान पर थे। पिता बिन्दुसार ने उन्हें उज्जैन में राज्याधिकारी बनाकर भेजा था। जब उनको सम्राट बिन्दुसार की भयानक बीमारी की सूचना मिली वह शीघ्र पाटली-

पुत्र लौटे और बड़े भाई सुमन तथा अन्य ९८ भाइयों को मारकर राजा बने। उन्होंने ३७ साल राज्य किया।

देव वंश जो सीलोन का बौद्ध ग्रन्थ है वह अशोक को शिशुनाग का पुत्र बताता है और नन्द राजाओं का कोई वर्णन नहीं करता।

अशोक वन्दना (जिसका गद्य रूपान्तर 'दिव्यावदान' है) वह बिन्दुसार को नन्द का पुत्र बताता है वह चन्द्रगुप्त का बिल्कुल वर्णन नहीं करता और कहता है कि बिन्दुसार के तीन पुत्र थे, सबसे बड़ा 'सुषभ' था अशोक तीसरे थे, उन्होने सुषभ को चालाकी से तथा एक अन्य को मारकर सिंहासन प्राप्त किया।

यह सब ही बौद्ध ग्रन्थ अशोक के सैंकड़ों वर्ष पश्चात् बने मालूम होते हैं अतः उनमें बहुत-सी बातें अप्रामाणिक हैं।

देव वंश, सीलोन के ग्रन्थ को तो स्मिथ आदि ने बहुत ही अप्रामाणिक व अविश्वसनीय बताया है पर भारत के शिलालेख आदि को 'अशोक' से जोड़ने वाला यही ग्रन्थ है।

अशोक महान का काल निश्चित करना :—

यह दो प्रकार से किया जाता है—

(१) यह मानकर कि अशोक महान मौर्य वंशका था और चन्द्रगुप्त मौर्य का पौत्र था और उसका पूरा नाम अशोकवर्धन था। इसमें यदि पुराणों के अनुसार लिया जावे तब १५३४ ई० पूर्व में चन्द्रगुप्त के २४ वर्ष व बिन्दुसार के २५ वर्ष निकालकर (१५३४—४९)=१४८५ ई० पूर्व आता है। और यदि जोन्स की इस कल्पना को मानकर निकाला जावे कि चन्द्रगुप्त मौर्य सिकन्दर का समकालीन था तो चन्द्रगुप्त मौर्य का काल (३१२—३२७)ई० पूर्व था। उसमें से ४९ वर्ष घटाकर निकाला जाता है। श्रीयुत श्रीवास्तव ने चन्द्रगुप्त का काल ३२२ ई० पूर्व लेकर (३२२—४९)=२७३ ई० पूर्व निकाला है। यहाँ

उन्होंने पुराण के ४९ वर्ष लिये महावंश के (३४+२८)=६२ वर्ष नहीं लिये। पर महावंश का यह मान लिया कि वह राजसिंहासन पर तो २७३ ई० पूर्व में बैठा। पर उसका राज-तिलक समारोह ४ वर्ष बाद २७३—४=२६९ ई० पूर्व में हुआ।

(२) दूसरी विधि अशोक महान के राजकाल निकालने की है कि सीलोन के बौद्ध ग्रन्थ के अनुसार वह बुद्ध भगवान के निर्वाण से २१८ वर्ष पश्चात् सिंहासन पर बैठा। परन्तु बुद्ध भगवान के निर्वाण का समय ही निकालना कठिन है अतः यह विधि काम नहीं आती।

ऊपर लिखी दो विधियों के अतिरिक्त :—

अशोक महान के काल का पता लगाने के लिये फ्लीट ने कलहन रचित 'राजतरंगणी' ग्रन्थ को पुराणों से भी अधिक महत्वपूर्ण बताया है। इस ग्रन्थ में अशोक का समय १२६० ईसा पूर्व दिया है, पर इतना प्राचीन समय हमारे विदेशी विद्वानों को स्वीकार न था। इस ग्रन्थ में अशोक महान को 'अशोक वर्धन ही' माना है।

इसलिये अशोक महान के काल की खोज अन्य किसी स्वतन्त्र आधार पर करने का प्रयत्न किया गया।

शिला-लेखों द्वारा अशोक महान के काल का निर्णय :—

जेमस्य प्रिनसिप ने शिला लेखों की खोज १८३० ई० के करीब की। उनमें राजा का नाम न देकर 'देवानाम् प्रिय' दिया था। प्रिनसिप ने इसका अर्थ सीलोन के राजा 'देवानाम् प्रिय-तिष्थ' से लिया, पर टरनोर ने 'दीपवंश' का उद्धरण दे यह कहा कि 'देवानाम् प्रिय' उसमें अशोक के लिये आया है, तब प्रिनसिप ने अपना पूर्व मत बदलकर इन शिलालेखों को 'अशोक' का बताना प्रारम्भ कर दिया।

फरवरी १८३८ ई० में प्रिनसिप ने दूसरी शिला-लेख का अनुवाद

जापा जिसमें समकालीन विदेशी राजाओं का नाम था। मार्च १८३८ ई० में उसने गिरनार के १३ वें शिला-लेख की खोज की।

इस १३ वें शिला-लेख में कहा गया है—

"देवानाम् प्रिय धर्म-विजय को ही प्रमुख विजय मनाता है। 'देवनाम् प्रिय' को यह विजय अपने विजित राज्य—तथा सब सीमावर्ती प्रदेशों में और छः सौ योजन तक जहाँ यवन राजा अन्तियोक राज्य करता है तथा उसके पास जो अन्य चार राजा तुरमाय, अन्तेकिन, मग, और अलिकसुन्दर हैं तथा नीचे जो चोल, पाण्डय तथा ताम्रपणि के राज्य हैं, इसी प्रकार राजा के राज्य में यवनों, कम्बोजों, नाभको. और नाभपन्तियों के बीच में तथा वंशानुगत भोज-नरेशों, आन्ध्रों तथा पारिन्यों में—प्राप्त हुई है····· । उन राज्यों के लोग भी जहाँ देवनाम् प्रिय के दूत नहीं जा सकते, देवनाम् प्रिय का धर्माचरण सुनकर 'धम्म' पर आचरण करेंगे।'

इस शिला-लेख में अशोक के पांच समकालीन राजाओं के नाम आते हैं। मग के बाद का नाम कुछ स्पष्ट न था, पर 'ई० नोरिस' ने इसे अलिकसुन्दर पढ़ा और तुरन्त उसका ध्यान सिकन्दर-महान की ओर गया, फिर उसने अपीरस के सिकन्दर पुत्र पाईरीबस से उसका परिचय दिया। इस परिचय का वेस्टरगार्ड, लेसिन, सनार्ट ने समर्थन किया, प्रो० बिलोच ने कौरीनथ के सिकन्दर पुत्र क्रेटीरस का होना अधिक ठीक बताया अन्य चारों राजाओं का परिचय प्रिनसिप ने इस प्रकार दिया :—

अन्तियोक यवन राजा=अन्तियोचस सीरिया का राजा।

तुरमाय=पिटोलमी द्वितीय मिश्र का फिलाडलफास।

अन्तेकिन=अन्तीगोनस गोनाटस— मेकेडोनिया का।

मग=मगस राजा सीरिन का।

'ई० हुलट्ज्च' विद्वान ने इन पाँचों राजाओं के परिचय का समर्थन किया और प्राचीन रोमन व ग्रीक इतिहासकारों के उद्धरण दे उनका समय भी दिया।

क्र.	नाम राजा	प्रिनसिप (Princep) द्वारा परिचय समर्थितहुलट् जच द्वारा	E. Hultzsch द्वारा तिथि
१.	अन्तियोक	अन्तियोचस Antiochus I राजा (Soter) सीरिया	२८०-२६१ ई.पूर्व
		या अन्तियोचस(Antiochus II) राजा पुत्र पहिले का	२६१-२४६ ई.पूर्व
२.	तुरमाय	पिटोलमी II (Ptolemy II) राजा (Philladephos) मिश्र का	२८५-२४७ ई.पूर्व
३.	अन्तेकिन	अन्तीगोनस गोनाटस (Antigonas Gonatas) राजा मेकडोनिया का	२७६-२६६ ई.पूर्व
४.	मग	मगस (Magas) राजा सीरिन (Cyrene) का	३००-२५० ई. पूर्व
५.	अलिकसुन्दर	सिकन्दर राजा अपीरस (Epirus) का	२७२-२५५ ई. पूर्व
		या सिकन्दर पुत्र क्रेटीरस राजा कोरीनथ (Corinath) का	२५२-२४४ ई. पूर्व

सम्भवत: इन्हीं शिला-लेखों व उनका काल देखकर मैक्समूलर ने १८५६ ई० में सर विलियम जोन्स द्वारा प्रतिपादित यह कल्पना कि चन्द्र-गुप्तमौर्य ही सन्ड्रोकोट्टस है, का दृढ़ता से समर्थन दे उसे पक्का बना दिया था, क्योंकि अशोक चन्द्रगुप्त का पौत्र था और उसका काल इस शिला-लेखों से करीब २७० ईसा० पूर्व पड़ता है।

सन् १८७४ ई० में जबकि जोन्स द्वारा प्रतिपादित, विलफोर्ड द्वारा समर्थित, तथा मैक्समूलर द्वारा परिपक्व की हुई 'भारतीय इतिहास की आधार शिला' अभी सर्वमान्य न हो पाई थी कि एक अंग्रेज विद्वान 'टेलवोयज वीलर' ने 'भारत का इतिहास' History of India ग्रन्थ लिखा उसमें उसने ग्रीक राजदूत द्वारा जो सन्ड्रोकोट्टस का चित्र खींचा है उसकी राजा 'प्रियदर्शी अशोक' के युवा-अवस्था जीवन से तुलना कर

यह परिणाम निकाला कि कहीं यह दोनों चरित्र एक ही पुरुष के तो नहीं हैं।

सन्ड्रोकोट्टस व अशोक की तुलना 'टेलवोयस वीलर' द्वारा :—

(१) अशोक अपनी युवावस्था में अपने पिता से असन्तुष्ट व दूर ही रहे। वह पाटलीपुत्र से दूर उज्जैन के राजाधिकारी के रूप में रहने को भेजे गये, जैसे राम को वनवास मिला हो, वहाँ भी उन्हें तक्षशिला में विद्रोह दबाने का कार्य सोंपा गया। अशोक के प्रारम्भिक जीवन को चित्र, ग्रीक लेखकों द्वारा दिये सन्ड्रोकोट्टस के प्रारम्भिक जीवन-चित्र उससे आश्चर्यजनक रूप में मिलता है। सन्ड्रोकोट्टस भी पाटलीपुत्र से निकाला हुआ राजकुमार था और उसने अन्त में ग्रीकों को तक्षशिला से बाहर निकाल फेंका।

(२) अशोक ने अपने भाइयों को मारकर, उन मरने वालों में राज्य का संवैधानिक उत्तराधिकारी उसका सबसे बड़ा भाई भी था, राजसिंहासन को प्राप्त किया था। यह भी बात ग्रीक इतिहासकारों ने सन्ड्रोकोट्टस के सम्बन्ध में लिखी है कि वह अनाधिकारी (Usurper) राजा था।

(३) अशोक प्रारम्भ में ब्राह्मणिक धर्म का अनुयायी था, बाद को बौद्ध बना, जिसका धर्म का वर्णन शिला-लेखों में है। सन्ड्रो-कोट्टस भी पहले ब्राह्मण धर्म के समान ईश्वर का पूजन करता था, परन्तु वह फिर हर वर्ष एक धर्म-सभा बुलाने लगा जिसमें प्रत्येक उस नवीन विचार पर जो संसार को, मनुष्य मात्र को, यहाँ तक पशु-पक्षियों के लिये भी कल्याणमय हो, विचार विमर्श होता था।

(४) आज यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि सन्ड्रोकोट्टस की धर्मसभाओं में जो विचार विमर्श होते थे, वही कल्याणमय, सर्वहितकारी, कुल संसार, मनुष्य-मात्र व प्राणी-मात्र को

लाभ पहुँचाने वाले धर्म के नियमों को हम अशोक शिला-लेखों पर देखते हैं जिनमें देवी-देवताओं का कोई वर्णन नहीं है।

(५) वीलर आगे कहता है कि ग्रीक इतिहासकारों ने सन्ड्रोकोट्टस के बारे में जो वर्णन दिया है कि वह सिकन्दर से तक्षशिला में मिला, लेकिन जिसने अपने अल्लड़ स्वभाव से सिकन्दर को बाद में नाराज कर दिया, वह वही राजकुमार था, जिसने बाद को अशोक के नाम से २००० वर्ष पहिले शिला-लेख व स्तम्भों द्वारा अपने नवीन धर्म का प्रचार किया था। इस मेरे कथन पर आश्चर्य न करना।

(६) वीलर फिर आगे कहता है कि सन्ड्रोकोट्टस का वह कथित पौत्र अशोक जिसे तक्षशिला में विद्रोह दबाने को भेजा गया था, उसी ने उस समय जब सिकन्दर की मृत्यु पर उत्तराधिकार के युद्ध चल रहे थे ग्रीक लोगों को भारत से खदेड़ दिया था और अन्त में सैल्यूकस की पुत्री से विवाह कर सन्धि को पक्का किया था।

वास्तव में वीलर को पूर्ण विश्वास हो गया था कि ग्रीक इतिहासकारों द्वारा जिस सन्ड्रोकोट्टस का वर्णन किया गया था वह बौद्ध सम्राट अशोक के रूप में प्रसिद्ध हुआ। क्योंकि वीलर अपने ग्रन्थ 'भारत के इतिहास' के फुट नोट में कहता है कि उसने 'कथित' शब्द जान-बूझकर प्रयोग किया है। इसका अर्थ यह था कि दूसरे लोग सन्ड्रोकोट्टस को चन्द्रगुप्त मौर्य बताते थे और अशोक का उसका पौत्र, पर उसकी दृष्टि में सन्ड्रोकोट्टस और अशोक एक ही व्यक्ति थे।

पर १८७४ ई० का वह काल था जब सभी अंग्रेजी विद्वान भारत के प्राचीन इतिहास को कोई कालगणना का आधार देने में लगे थे। क्योंकि उनकी दृष्टि में भारतवासी इतिहास लिखना नहीं जानते थे और उन्होंने कल्पना के आधार पर युगों का निर्माण कर रखा था जो असम्भव था, इसलिये विंसेन्ट स्मिथ ने अपने विचार अनुसार वंशों का काल निर्धारित

कर सिकन्दर के आक्रमण से भारत का इतिहास प्रारम्भ कर सन् १९०४ ई० में इस बात की घोषणा की कि अशोक का काल शिला-लेख से २७० ई० पूर्व होने के कारण उसके पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य का काल मोटे रूप में निश्चित हो गया।

स्मिथ के इस निष्कर्ष को केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रो० रेप्सन ने यह कहकर अपनी पुस्तक में झुठला दिया कि 'यह कहाँ सिद्ध हुआ कि अशोक मौर्य वंश का था' और चन्द्रगुप्त भी मौर्य था।

और स्मिथ को मानना पड़ा कि कोई पुरातत्व खुदाई या मुद्राओं आदि का प्रमाण नहीं है कि चन्द्रगुप्त व अशोक (शिलालेख वाले) एक ही वंश अर्थात् मौर्य वंश के थे। उसने कहा कि सब प्रमाण मुसलमानों ने नष्ट कर दिये हैं।

और बिना प्रमाण के भारत के इतिहास में यह लिखा जाता रहा कि चन्द्रगुप्त मौर्य सिकन्दर का समकालीन था और अशोक महान चन्द्रगुप्त मौर्य का पौत्र था।

पर देश स्वतन्त्र होने पर देश के इतिहास की पुनः खोज-बीन प्रारम्भ हुई, और हमारे नवीन इतिहास—अनुसन्धानकर्ताओं के सामने यह प्रश्न आया कि यदि १३वें शिला-लेख से वास्तव में यह सिद्ध होता है कि अशोक का समय २७० ईसा पूर्व के करीब है तो यह कौन-सा अशोक है। यह मौर्य वंश का अशोकवर्धन नहीं हो सकता। वह तो बहुत प्राचीन काल में हुआ। डा० त्रिवेद व मंडलाशा अग्रवाल ने यह कहकर सन्तुष्टि करली कि प्रियदर्शी के शिला-लेख में कोई संवत तो दी नहीं है और जो पांच नाम आये हैं वह ग्रीक राजा नहीं मालूम पड़ते, वह भारतीय यवन भी हो सकते हैं। पर यह स्पष्टीकरण बिना राजाओं की पहचान बताये नवीन इतिहासकारों को सन्तुष्ट न कर सके।

हम पिछले अध्याय में लिख चुके हैं कि श्री कृष्णमाचार्य ने सन्ड्रोकोट्टस को समुद्रगुप्त से तुलना कर यह मत प्रगट किया कि सन्ड्रोकोट्टस वास्तव में चन्द्रगुप्त (गुप्त वंशीय) भी न होकर समुद्रगुप्त है।

इस अध्याय में हमने विद्वान 'वीलर' का मत देखा कि सन्ड्रोकोट्टस अशोक निश्चित रूप से है।

अतः श्री कृष्णमाचार्य ने अशोक की तुलना समुद्रगुप्त से करके देखी।

समुद्रगुप्त व अशोक की तुलना श्री कृष्णमाचार्य द्वारा :—

(१) अशोक अपने पिता से रुष्ट थे, समुद्रगुप्त भी अपने पिता के व्यवहार से असन्तुष्ट व क्रुद्ध थे।

(२) अशोक ने राजसिंहासन भाइयों को मारकर शायद पिता का भी अन्त कर प्राप्त किया, समुद्रगुप्त ने भी पिता व भाइयों को मारकर राजसिंहासन लिया।

(३) दोनों प्रारम्भिक हिन्दू धर्म के अनुयाई थे।

(४) दोनों ने कलिंग विजय की, दोनों के जीवन में कलिंग विजय का बड़ा महत्व है।

(५) अशोक को उपगुप्त ने बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। यह उपगुप्त अशोक के वंश का ही व्यक्ति था। समुद्रगुप्त के बारे में प्रसिद्ध है कि उसका गुरु बौद्ध शिक्षक वासुवन्धु था।

(६) शिला-लेखों वाला अशोक, यद्यपि बौद्ध धर्मावलम्बी था, तो भी ब्राह्मणों के प्रति बहुत सम्मान व आदर का भाव रखता है। इसी प्रकार समुद्रगुप्त, यद्यपि कट्टर सनातन हिन्दू धर्म को मानने वाला बताया जाता है, तो भी बौद्ध धर्म का महान संरक्षक था और पूरे गुप्त-वंश के काल में बौद्ध-जीवन परम्पराओं को मान्यता मिली, और बौद्ध विहारों को उदारता से राज्य की ओर से आर्थिक तथा हर प्रकार की सहायता प्रदान की गई।

(७) दोनों राजा अशोक व समुद्रगुप्त का बहुत गहरा सम्बन्ध सीलोन, बेकट्रिया, और कितने ही विदेशी देशों से रहा।

इस समानता को दिखाकर श्री कृष्णमाचार्य इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि निःसन्देह अशोक महान व समुद्रगुप्त एक ही व्यक्ति हैं।

फिर श्री कृष्णमाचार्य सिसेन्ट स्मिथ की इस टिप्पणी पर 'कि आधुनिक भारतीय इतिहास के पाश्चात अनुसन्धानकर्ताओं ने खोज कर इतिहास के दबे डेरों में से समुद्रगुप्त का नाम निकाला है। आश्चर्य है कैसे इतना महान राजा, योद्धा व विजयेता, कवि व संगीतकार, जिसने सम्पूर्ण भारत को विजय किया, और जिसका राज्य ओक्सेज नदी से सीलोन तक फैला था, उसका नाम भी भारतीय इतिहासकारों को नहीं मालूम था' श्री कृष्णमाचार्य कहते हैं इसका उत्तर बहुत सरल है। अशोक का नाम प्रत्येक व्यक्ति भारत में जानता है और इस सम्राट की कहानियाँ प्रत्येक घर में कही जाती हैं। उसी का नाम सीलोन में प्रिय-दर्शी के रूप में प्रचलित है और वहाँ वही कथायें प्रिय-दर्शी की बताकर चलती हैं। पर ग्रीक इतिहासकार उसको केवल सन्ड्रोकोट्टस के नाम से जानते थे। इस समुद्रगुप्त का नाम मुद्राओं पर अंकित था, पर वह खो गई थी, जो अब पुनः मिल गई।

श्री कृष्णमाचारी आगे लिखते हैं कि इस राजा की अमर कहानी इलाहाबाद के स्तम्भ पर आज भी लिखी है। यह स्तम्भ 'अशोक स्तम्भ' के नाम से जाना जाता है, पर तीनों नामों को—समुद्रगुप्त-अशोक-प्रिय-दर्शनी—जोड़ता है। ग्रीक इतिहासकारों ने कभी प्रियदर्शनी नाम नहीं सुना क्योंकि मैगस्थानीज पालीबोथ्या से सन्ड्रोकोट्टस के बौद्ध बनने से पहिले ही चला गया था और सीलोन के बौद्धों को 'प्रिय-दर्शनी' का हिन्दू नाम समुद्रगुप्त कभी मालूम करने की आवश्यकता हो न हुई क्योंकि उन्होंने उसको बौद्ध सम्राट के रूप में ही देखा। और भारत में अशोक महान और उसकी कथायें इसी नाम से इतनी प्रचलित थीं कि वह दोनों नाम समुद्रगुप्त व प्रियदर्शनी भूल गये और केवल अशोक ही उन्हें याद रहा। समुद्रगुप्त नहीं अशोक। कौन नहीं जानता उसको।

पुराने पुराण सब आन्ध्र वंश की समाप्ति पर समाप्त हो जाते हैं। जितने स्मारक थे वह सब मुस्लिम आक्रमणकारियों ने नष्ट-भ्रष्ट कर

दिये। कैसे रहता याद नाम समुद्रगुप्त का। गुप्त वंश व समुद्रगुप्त का वर्णन 'कलियुग राज वृत्तान्त' में ही मिलता जो दो हजार वर्ष से चला आता है, पर खेद है हमारे ही विद्वानों ने उसे जाली ग्रन्थ बता दिया और इसलिये इतिहास को बिगाड़ लिया।

सन्ड्रोकोट्टस के बारे में ग्रीक इतिहासकार यह भी कहते हैं कि उसने ६ लाख सेना रख पूरे भारत को जीत लिया था और सैल्यूकस नेकटोर की पुत्री से विवाह किया था। परन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य या गुप्त वंश के चन्द्रगुप्त के बारे में ऐसा कोई वर्णन नहीं मिलता कि उन्होंने इतना पराक्रम दिखाया हो और ग्रीक राजकुमारी से विवाह किया हो। पर इलाहाबाद के स्तम्भ पर समुद्रगुप्त की विजयों के साथ यह भी खुदा है कि समुद्रगुप्त को भारत के उत्तर-पश्चिम के विदेशी राजा ने अपनी पुत्री विवाह में दी थी।

ग्रीक इतिहासकारों ने यह भी वर्णन दिया है कि सन्ड्रोकोटटस ने अपने बड़े भाई की पत्नी से सम्बन्ध जोड़ चालाकी से अपने बड़े भाई को मारा। अशोक के तीन भाई बताये गये हैं जिनमें सबसे छोटा अशोक था और यह भी कहा गया है कि उसने अपने दोनों बड़े भाइयों को मारकर सिंहासन प्राप्त किया। सबसे बड़े भाई को धोखे से मारा। समुद्रगुप्त ने भी एक बड़े भाई कच को मारा और दूसरे बड़े भाई रामगुप्त या शर्मगुप्त को उसकी पत्नी ने सम्बन्ध जोड़कर मारा। यह बात विशाखादत्त के, जो 'मुद्रा राक्षस' के भी रचियता थे और जो ६०० ई० के करीब बंगाल में हुये, एक नाटक 'देवी चन्द्रगुप्तम्' में कही गई बताते हैं। इस नाटक का आज तक किसी को दर्शन नहीं हुआ केवल उसके कुछ कहे जाने वाले उद्धरण दूसरे नाटकों में मिले, अतः उसका अर्थ भिन्न-भिन्न लगाया गया है। स्मिथ उस नाटक के कथानक को गैर ऐतिहासिक बताता है। कुछ ने 'रामगुप्त' को समुद्रगुप्त का पुत्र बताया है।

ऊपर लिखी बातों के अतिरिक्त कई बातें और हैं जो अशोक को समुद्रगृप्त से जोड़ती हैं।

(१) बौद्ध धर्म के विकास में चार संगीतियों या धर्म सभाओं का

बड़ा महत्व है। पहली संगति बुद्ध के परिनिर्वाण के कुछ ही समय बाद गिरिब्रज (राजगृह) के निकट हुई। दूसरी संगति वैशाली में हुई। तीसरी संगति अशोक के काल में पाटलीपुत्र में हुई।

इसका अर्थ है कि अशोक की राजधानी पाटलीपुत्र थी। पाटलीपुत्र अब छोटा ग्राम कुसुमपुर न रहा था वह गुप्त वंश की राजधानी थी। अतः अशोक का वंश मौर्य न हो, अशोकवर्धन न होकर, गुप्त वंशका समुद्रगुप्त–अशोकादित्य था।

(२) अशोक ने जिस धर्म का प्रचार किया वह 'धम्म' अब अनीश्वरवादी, आत्मा को न मानने वाला वह धर्म नहीं था जिसका खण्डन आदि शंकराचार्य ने किया। बुद्ध भगवान ने ईश्वर व आत्मा पर मौन रखा था, पर उनके पश्चात् बौद्ध धर्म इन दोनों की उपस्थिति का विरोधी हो गया था। अशोक ने पुनः उसको व्यवहारिक रूप दिया और लोकप्रिय बनाया। द्वितीय स्तम्भ लेख में अशोक स्वयं से प्रश्न करता है कि "कियं चु धम्मे ?" (अर्थात् धम्म क्या है ?) इसके उत्तर में वह स्वयं कहता है कि "अपासिनने बहुकथा ने दयादाने सचे सोचये" अर्थात् पाप-कर्म से निवृत्ति, विश्व-कल्याण, दया, दान, सत्य, एवं कर्म-शुद्धि ही धम्म' है।'

फिर कई शिला-लेख इसी कर्म-शुद्धि की व्याख्या करते हैं।

यह व्याख्या वास्तव में विशाल हिन्दू धर्म की व्याख्या है और समुद्रगुप्त जैसा गुणी, कवि का ही यह काम था।

(३) अशोक के शिला लेखों से यह भी पता चलता है कि भारत के नीचे सदूर-दक्षिण में चोल आदि राज्य उसके विजित राज्य न थे। उनमें सीलोन भी था। वहाँ उस समय राजा तष्य राज्य कर रहा था। वह अशोक के राज्य शासन से बहुत प्रभावित हुआ और उसने अशोक की सेवा में बहुमूल्य रत्नों के उपहार भेजे और उनसे अपना सम्बन्ध ही स्थापित नहीं किया बल्कि अशोक सम्राट का संरक्षण भी चाहा।

इसके उत्तर में सम्राट अशोक ने तिष्य को राजाभिषेक की सामग्री

सहित अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को भी श्रीलंका भेजा। अपने संदेश में अशोक ने यह भी कहलाया 'मैं अब बौद्ध धर्म ग्रहण कर उसका उपासक बन गया हूँ, आप भी इसी धर्म में प्रव्रज्जित हो जाइए।"

राजपुत्र महेन्द्र पौष पूर्णिमा को श्रीलंका पहुँचे और उस समय लंका की राजधानी अनुराधापुर थी। महेन्द्र ने जिस ऊँची शिला पर बैठकर 'धम्म' का उपदेश दिया वह आज भी 'मिहिन तले' कहलाती है। और वहिन संघमित्रा जो अपने साथ बोध-वृक्ष की शाखा लाई थी वह भी लगाई गई। तिष्थ अब देवानाम् प्रिय तिष्थ कहलाये और बौद्ध धर्म श्रीलंका में फैला। वहाँ विहारों की स्थापना हुई, स्तूप भी निर्माण हुआ जिसमें महात्मा बुद्ध की अस्थियां संचित की गई, आलेख खोदे गये जो अशोक सम्राट की शिला-लेखों की लिपि में है। और श्रीलंका में संस्कृत, सिंहल व पाली भाषाओं का संगम हुआ। देवानाम् तिष्थ के बाद आर्यदेव सिंहल राजवंश के नरेश हुये। वह 'धम्म' प्रचारक भी थे और नरेश भी। वह प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान नागार्जुन के शिष्य थे जिनका काल लगभग २०० ईसा पूर्व बताया जाता है। इस सब वृत्तान्त से यही निकलता है कि यह घटना लगभग २७० ईसा पूर्व की है। और यह 'महेन्द्र' जिनको अशोक का पुत्र कहा गया है। चन्द्रगुप्त मौर्य के पौत्र अशोकवर्धन का कोई पुत्र या पौत्र महेन्द्र नहीं था। यहाँ भी समुद्रगुप्त का पौत्र महेन्द्र था, यह वही होगा और संघमित्रा उसकी बहिन होगी। यह महेन्द्र कुमार गुप्त था जिसने ह्वेनसांग के वर्णन अनुसार नालन्दा के विश्वविद्यालय की स्थापना की थी।

(४) गुप्त अभिलेखों की सहायता जो तिथियां निकाली गई हैं। वह इस प्रकार हैं :—

	लेख	तिथि
चन्द्रगुप्त प्रथम	पुराण	९ वर्ष शासन किया पुराण से
चन्द्रगुप्त द्वितीय	मथुरा	६१
स्कन्द गुप्त	जूनागढ़	१३६
कुमार गुप्त द्वितीय	सारनाथ	१५४
बुध गुप्त	सारनाथ	१५७

पुराण अनुसार चन्द्रगुप्त प्रथम ने ९ वर्ष शासन किया। उसने अपने सम्राट चन्द्रश्री को मारकर शासन पाया, उस समय वह तथा समुद्रगुप्त दोनों जो अयोध्या आदि के सामन्त से चन्द्रश्री के सेवा में थे। उसके मारने में भी समुद्रगुप्त सहायक होगा। राजगृह (गिरिव्रज) हाथ नहीं आया, अतः चन्द्रगुप्त ने कुसुमपुर को पाटलीपुत्र में विकसित कर राजधानी बनाया। इसमें भी समुद्रगुप्त ने चन्द्रगुप्त की सहायता की होगी अतः यह सम्भावना लगती है कि पाटलीपुत्र के राज्याभिषेक के समय चन्द्रगुप्त ने समुद्रगुप्त को युवराज घोषित कर दिया। यह उसके दो बड़े भाइयों को बुरा लगा। चन्द्रगुप्त भी बाद में 'कच' जो समुद्रगुप्त का सौतेला बड़ा भाई था। अधिकप्रेम करने लगा और शासन में सहयोगी बना लिया और समुद्रगुप्त दूर उज्जैन में गवर्नर बनाकर भेज दिया गया और तक्षशिला में विद्रोह दबाने का भी काम बाद में उसे दिया। सिकन्दर के आक्रमण के समय यह समुद्रगुप्त सिन्धु नदी के पास वाले क्षेत्र में था, वह सम्भवतः सिकन्दर से मिला भी, उसकी रणनीति आदि का अध्ययन किया, सिकन्दर के चले जाने पर उसने उस समय सैल्यूकस उत्तराधिकार की लड़ाई में व्यस्त था, तक्षशिला व भारतीय क्षेत्र हिरात से ग्रीकों को खदेड़ दिया, इस क्षेत्र में अपना शासन सुदृढ़ कर उसने जो सेना बना रखी थी। उसमें शायद असभ्य हूण जैसे लोग भी थे। जिन्हें मलेच्छ कहा जाता था, उनको सहायता से पाटलीपुत्र में दो बड़े भाइयों तथा पिता को मारकर सिंहासन प्राप्त किया, पर राज-तिलक समारोह अभी नहीं हुआ। महावंश के अनुसार ३-४ वर्ष बाद राज्याभिषेक कराया और पुराण अनुसार यह समारोह अयोध्या में हुआ। इस बीच उसने अपनी विजय यात्रायें चालू रखीं और लगभग पूरा दक्षिण कुछ चोल आदि छोड़कर जीत लिया। राज्याभिषेक के आठवें वर्ष में कलिंग को जीता। इस युद्ध में उसने भीषण जन-संहार किया। बहुत संख्या में ब्राह्मण भी मारे गये। इस युद्ध का उसके चित्त पर बहुत प्रभाव पड़ा और उसने क्रूर युद्ध करना छोड़ दिया। कई वर्ष तक वह मनन करता रहा। इस बीच उसने अश्वमेध यज्ञ भी विजय क्रूरता से मुक्त होने को किया, पर चित्त शान्ति न हुई, उसने मांस खाना छोड़ दिया, कुछ दिनों अपने दरबार में धर्म-सभायें करता रहा और अन्त में बौद्ध हो गया। वह १४ वर्ष हिन्दू राजा के रूप में राज्य करता रहा

और ३७ वर्ष उसने बौद्ध सम्राट अशोक (अशोकादित्य) नाम से राज्य किया। और उसकी राज्य-विजय, धर्म-विजय के रूप में बदल गई।

इस तालिका में चन्द्रगुप्त द्वितीय का शासन ६१ वीं गुप्त संवत् में प्रारम्भ होना दिखाया है। चन्द्रगुप्त ने ९ साल राज्य किया, उसके बाद समुद्रगुप्त ने सिंहासन प्राप्त किया, पर राज्याभिषेक ३-४ वर्ष बाद हुआ। अतः राज्याभिषेक से ५१ वर्ष राज्य करना मानकर, मालूम होता चन्द्रगुप्त द्वितीय ६१ गुप्त संवत में सिंहासन पर बैठा, फिर चन्द्रगुप्त द्वितीय व कुमारगुप्त का शासन ७५ वर्ष चला, तव स्कन्दगुप्त १३६ गुप्त संवत में सिंहासन पर बैठा। इसके काल से हूणों के आक्रमण प्रारम्भ होते हैं और गुप्त वंश के राजाओं ने हूणों का दर्प चूर्ण करने में विशेष सफलता प्राप्त की। राजवंश कमजोर होता गया और यवनों, शकों का बल बढ़ा।

इस सबसे सिद्ध होता है चन्द्रगुप्त ने ३२८ ई० पूर्व से ३२१ ईसा पूर्व तक राज्य किया, समुद्रगुप्त ने सिंहासन ३२१ ईसा पूर्व में प्राप्त किया ३१८ या ३१७ में उसका राज्याभिषेक हुआ और २६७ या २६६ ईसा पूर्व तक राज्य किया और वह सिकन्दर, सैल्यूकस तथा अन्तियोक व तिष्थ का समकालीन था।

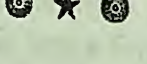

अध्याय–११

इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता

इतिहास का राष्ट्र उत्थान में वही महत्व है जो एक कुटुम्ब में उसके महान पूर्वजों की गाथा का होता है। जैसे हम अपने पूर्वजों की गाथा सुनकर कि वह कितने विद्वान थे, शूर थे, पराक्रमी थे, ऊँचे संगीतज्ञ थे, अपने को महान बनाने का प्रयत्न करते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र भी अपने प्राचीन भव्यता, शूरतापूर्ण, पराक्रमी, ज्ञान विज्ञान से भरे इतिहास को जानकर ऊँचे उठते हैं और यश को प्राप्त होते हैं। इतिहास ही प्राचीनता को आधुनिकता से जोड़ता और भविष्य का निर्माण करता है। संसार में कितने देश व जातियां उठीं व नष्ट हो गईं, न अब सुकरात का ग्रीस है, न जुलियस सीजर का रोम है, न वह पिरेमिड वाला मिश्र है, न वह प्राचीन प्रतिभाशाली ईरान है सब नष्ट हो गये, उनकी प्राचीनता व आधुनिकता में कोई कड़ी जोड़ने वाली नहीं रही, राष्ट्र ही मर गये क्योंकि इतिहास से सम्बन्ध न रहा, भारत के जीवित रहने का एकमात्र कारण उसके प्राचीन इतिहास में गौरव व विशालता का हिन्दुओं को विश्वास था। उसको मिटाने का पाश्चात्य लोगों ने कितना प्रयास किया, यह किसी से छिपा नहीं है।

आज भारत उस ७००-८०० वर्ष से गुलामी से बहुत कुछ खोकर—देश बँटवाकर स्वतन्त्र हुआ है। क्या आज भी हम उसी इतिहास को पढ़कर व पढ़ाकर, राष्ट्र घातक काम तो नहीं कर रहे हैं? संसार मानता है कि वेद संसार का 'प्राचीनतम साहित्य' है। 'उपनिषदों जैसा उपयुक्त और श्रेष्ठ उपदेश और कहीं नहीं है।' थारटन 'History of British India' नामक ग्रन्थ में लिखता है 'विद्यमान लोगों में हिन्दू सभ्यता सबसे प्राचीन है, उसका उदय औरों से पूर्व हुआ और उसकी प्रगति बड़ी तेजी से

हुई। उस समय नाइल (नील) नदी की घाटी में खड़े पिरेमिड्स भी नहीं बने थे। ग्रीस और इटली जैसे देश जो आधुनिक युग के स्रोत माने जाते हैं उनमें जब वन्य-पशु ही विचरते थे, उस समय भारत में समृद्धि व सभ्यता विराजती थी।

डा० ऐनी वेसेन्ट लिखती हैं 'चालीस वर्षों से अधिक विश्व के प्रमुख धर्मों का अध्ययन करने के पश्चात मुझे यह प्रतीत हुआ कि हिन्दू धर्म जितना सबको मिलाने वाला, शास्त्रीय, तत्वनिष्ठ व आध्यात्मिक है अन्य कोई धर्म नहीं है। उससे जितना परिचय बढ़ता है उतना ही उसके प्रति अधिक लगाव होता है, उसे जितनी अधिक मात्रा में समझने का यत्न करो उतना ही वह अत्यधिक मौलिक प्रतीत होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं होना चाहिये कि हिन्दुत्व के बिना भारत नगण्य हो जायेगा। हिन्दुत्व ही भारतका मूलाधार है। यदि भारत से हिन्दुत्व उखाड़ा गया तो एक निर्मूल पेड़ की तरह भारत सूखकर नष्ट हो जायेगा। भारत में कई धर्म हैं और अनेक वंशों के लोग बसते हैं, किन्तु हिन्दुत्व से प्राचीन कोई नहीं है। न ही भारत के राष्ट्रीय व्यक्तित्व में उनका कोई भाग है। जिस प्रकार वे धर्म यहाँ आते रहे वैसे वह समाप्त भी होते गये, तो भी, भारत ज्यों का त्यों बना रहा। किन्तु यदि हिन्दुत्व नष्ट हो गया तो भारत में बचेगा ही क्या ? केवल एक भूमि। नष्ट वैभव की स्मृति दिलाने वाला एक खोखला नाम। भारत का साहित्य हो, या कलायें या ऐतिहासिक इमारतें—सभी पर हिन्दुत्व की छाप लगी हुई है। यदि हिन्दुत्व की सुरक्षा हिन्दू ही नहीं करेंगे तो और कौन करेगा ? यदि भारत के लोग ही हिन्दुत्व को त्यागते रहे तो उसे कौन अपनाएगा ? भारत ही भारत को बचा सकता है। और हिन्दुत्व तथा भारत अभिन्न हैं।'

और आज भी हम अपने बच्चों को यह पढ़ावें कि भारत में यह हिन्दू (आर्य) करीब तीन हजार या ३½ हजार वर्ष हुये तब इनके पूर्वज आक्रमणकारी के रूप में इस देश में घुसे थे और जैसे पाश्चात लोगों ने उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका व आस्ट्रेलिया में सब ही मूल जातियों व सभ्यताओं को नष्ट कर अधिकार कर लिया, उसी प्रकार हिन्दुओं के पूर्वजों ने भी यहाँ रहने वाली मूल जाति (द्रविड़ आदि) को मारकर या

उनको जंगलों में भगाकर या दास बनाकर अपना आधिपत्य जमाया। इस देश में यह आक्रान्ता है यह उनका असली देश नहीं, वेद आदि सब तीन हजार वर्ष के अन्दर रचे गये, कपोल कल्पित युगों की कहानी बनाई गई, मनगढ़न्त इतिहास लिख लिया गया। क्या बनेगा यहाँ का बालक, कौन से आदर्श होंगे उसके सामने, और देश क्यों न विभिन्न भागों में बँट जावेगा। यह देश नहीं उपमहाद्वीप कहलायेगा हर एक उसमें अपनी अलग संस्कृति ढूँढ़ेगा और अपनी पृथक पहिचान बनाये रखने की कोशिश करेगा। कौन शक्ति होगी जो उसे जोड़ेगी।

एक और विचित्र बात है कि मानवीय सभ्यता लाखों वर्ष प्राचीन होते हुये भी, जहाँ पाश्चात्य लोग गये, खुदाई की तथा इतिहास संजोया, वहाँ किसी भी देश-प्रदेश का इतिहास ३००० या ५००० वर्ष से पूर्व पहुँच ही नहीं पाता है, अधिकतर वह ढाई-तीन हजार वर्ष, बहुत गया तो पाँच हजार वर्ष तक पहुँचकर एकाएक रुक जाता है। जैसे कोई पर्दा लगा हो जिसके पार हम कुछ देख या सोच नहीं पाते। सिन्धु घाटी हो, मिश्र हो, मैसोपोटामिया हो, हित्ती हो, यहां तक दक्षिण अमेरिका का पीरू व उत्तर अमेरिका का मैकजीको हो। सभी सभ्यताओं का पता पांच सहस्र वर्ष के भीतर ही भीतर रह जाता है। कहीं-कहीं तो यह सीमा केवल ३५०० वर्ष और १००० वर्ष के भीतर रह जाती है। मानव का प्राचीनतम साहित्य जो वेद हैं उनका काल मैक्समूलर ने ईसा पूर्व सन् १२०० का दे रखा है। आजकल पाश्चात्य प्रणाली की शिक्षा में पढ़े सारे विद्वान उसी को अन्तिम सत्य समझकर समूचे इतिहास का आरम्भ वहीं से मानते हैं। बहुत बढ़ गये तो जैसे स्वतन्त्र भारत के प्रथम शिक्षामंत्री मौ० आजाद की अध्यक्षता में हुई मीटिंग में नवम्बर १९५० में वेदों का काल २००० से १५०० ईसा पूर्व मान लिया गया अर्थात् ४००० से ३५०० वर्ष के अन्दर। जबकि चीन के प्रथम राजा का संवत् ९ करोड़ ६० लाख वर्ष से ऊपर हैं। और परम्परा में वैवस्वत मनु संवत् १२ करोड़ वर्ष से अधिक है।

यह खेल की, ईसाई धर्म सृष्टि रचना को ४००४ ईसा पूर्व में मानता है, आज भी खेला जा रहा है। और भारत के विद्वान उसके शिकार हैं।

वास्तव में ५००० हजार वर्ष पूर्व महाभारत युद्ध के पश्चात, भारत

का सम्बन्ध संसार के देशों से टूट गया। उस समय तक संसार में भारत से विद्वान जाते रहे। संस्कृत विश्व-भाषा थी और ज्ञान की गंगा बहती रही। पर महाभारत में महासंहार हुआ एक रूसी विद्वान के अनुसार तो आणविक शस्त्रों का प्रयोग हुआ और उस विनाश का प्रभाव यह हुआ कि भारत में विद्वानों की कमी हुई और संसार के देशों से सम्बन्ध टूटने पर संसार में अन्धकार का युग आ गया और यहूदी, ईसाई, इस्लाम धर्मों ने वह विनाश किया कि पुराने सब साहित्य जला दिये, इमारतें नष्ट कर दीं और लोग कहने लगे कि यूरोप में ईसाई धर्म से पहिले कुछ न था, अरब देशों में इस्लाम से पहिले कुछ न था, सृष्टि ही बने ६००० वर्ष से अधिक नहीं हुये।

जलप्लावन की कथा शतपथ ब्राह्मण, महाभारत व पुराणों में दी है। यह वैवस्वत मनु के समय में आया अर्थात् भारतीय परम्परा के अनुसार इस घटना को हुये करीब २१ लाख वर्ष हुये। यह ऐसा जलप्लावन था कि जिसके कारण प्रलय की दशा उत्पन्न हो गई और पूरी पृथ्वी जल में डूब गई। इतनी वर्षा, हिमपात, भूचाल आये कि नदियों की धारायें बदल गईं, भारत में सरस्वती सी विशाल नदी ही लोप हो गई और उस समय जो बस्तियां थीं नष्ट हो गईं। पशु व पक्षी, वृक्ष व वनस्पति, मनुष्य और उसकी सभ्यता सभी का अन्त हो गया, केवल वही जो बचाये जा पाये शेष रहे और उस प्रलय के बाद उन्हीं से पुनः सृष्टि की रचना हुई। यह मनु और उनकी नाव की कहानी कुछ भेद से प्राचीन जगत के अन्य साहित्यों से भी विद्यमान है बाइबिल में लिखा है कि ईश्वर ने पृथ्वी की ओर दृष्टिपात कर यह पाया कि वह पापमय है। अतः उसने नोआ (नूह) से कहा कि मैं पृथ्वी पर जलप्लावन लाता हूँ। पृथ्वी पर जो कुछ भी है, सब उसे नष्ट हो जावेगा, तू नौका पर चढ़ जाना और अपनी स्त्री, और पुत्रों को, तथा पुत्र-वधूओं को चढ़ा लेना, साथ ही, प्रत्येक प्रकार के प्राणी के अपने साथ ले लेना, अभी सात दिन शेष हैं। सात दिन बाद जलप्लावन आया और सब कुछ नष्ट हो गया।

मैसोपोटामिया के क्षेत्र में प्राचीन कैल्डियन सभ्यता के जो बहुत से अवशेष उपलब्ध हुये हैं उनमें ऐसी तख्तियां भी हैं जिन पर प्राचीन लेख

मिट्टी से बने हैं। ऐसे कुछ तख्तियों पर जलप्लावन की कथा भी अंकित है, इस कथा में भी बाढ़ से बचने के लिये नौका का प्रयोग और उसमें सब प्रकार के प्राणियों तथा चीजों आदि को बचाकर सुरक्षित रखनेकी बात कही गई है। इन कैल्डियन लोगों का प्राचीन सृष्टि संवत् २१ करोड़ वर्ष से अधिक है और मनुष्य संवत ४ लाख ७० हजार वर्ष से अधिक है।

प्राचीन ग्रीस में भी जलप्लावन की कथा प्रचलित थी इस कथा के अनुसार जब प्रोमीथिडस का पुत्र दिउक्लियन जब राज्य करता था, तो जुपिटर देवता के क्रोध से जलप्लावन आया और दिउक्लियन ने नौका पर अपनी पत्नी पाइरा आदि के साथ अन्य प्राणी भी बचाये। नौ दिन तक बाढ़ का पानी बढ़ता रहा, नौका पर्वत की चोटी पर जा लगी, तब बची, और पुनः देश को आवाद किया गया।

यह कथा प्राचीन देशों व जातियों में इस प्रकार पायी जाती है, कि इसको सर्वथा कल्पित कहना कठिन है। भूगर्भ-शास्त्रियों का भी कहना है कि पृथ्वी पर प्राकृतिक दशाओं में बहुत परिवर्तन होते रहे हैं और एक से अधिक बार ऐसे अवसर आये हैं जबकि पृथ्वी का बड़ा भाग हिम से आच्छादित हो गया था। सम्भवतः यह हिमप्रलय का एक रूप जलप्लावन हो।

जलप्लावन की कथा प्राचीन भारतीय अनुश्रुति का एक महत्वपूर्ण अंग है। वह भारतीय इतिहास का एक मापदण्ड बनाया जा सकता है। वैवस्वत मनु द्वारा उसी समय एक नवीन सृष्टि का प्रारम्भ होता है।

भारत इतने प्राचीन काल से ज्ञान का भंडार रहा है कि वैवस्वत मनु के समय में वेद उपस्थित थे, मनु स्वयं कई मंत्रों के दृष्टा हैं। इसको भी अभारतीय विद्वान नहीं समझ पाते। आपके सामने एक उदाहरण उपस्थित करता हूँ। अभी-अभी मार्च १९८८ में इङ्गलैंड के ट्रिन्टी कालिज (कम्ब्रिज विश्वविद्यालय के एक कालिज ने) तामिलनाडु से रहने वाली एक विधवाको करीब ४५,००० रुपया साल का उसके जीवन के अन्त तक लिये पारितोषिक देना निश्चित किया, और ब्रिटिश राजदूत इस प्रस्ताव को लेकर उस विधवा से मिले, उसने धन्यवाद सहित इस पारितोषिक को

लेना स्वीकार कर लिया। यह कौन है यह विधवा, और क्यों दिया गया यह पारितोषिक। यह स्त्री श्री रामानजुम (१८८७-१९२०) की विधवा है जिसकी अल्पकाल में मृत्यु हो गई। यह रामानुजम करीब ४००० गणित के फार्मूले (सूत्र) व जायमेट्री के सिद्धान्त लिख कर छोड़ गया है, कि कितने ही वर्षों के अनुसन्धान के बाद, पाश्चात्य कई विश्वविद्यालयों के विद्वान इन फार्मूलों व प्रमेयों में कुछ के प्रूफ (हल) जुटा पाये हैं। यह फार्मूले व प्रमेय यह रामानुजम अपनी अभ्यास की कापियों में व पर्चों पर लिखकर छोड़ गया, वह स्वयं उनका प्रूफ नहीं जानता था और न उसने किसी फार्मूले या प्रमेय का प्रूफ लिखा। वह इन्टर पास भी न था। कौन-सी ईश्वरीय शक्ति उसके चित्त में बैठ उसके कर-कमलों से उस ज्ञान (वेद) का प्रगटीकरण करती थी, और आज जो पाश्चात प्रोफेसर उसके लिखे फार्मूला का प्रूफ ढूंढ़ लेता है वह उस फार्मूला का रचियता नहीं केवल दृष्टा है। वेद ऐसे ही ज्ञान है। वेद का अर्थ हो ज्ञान है।

भारत के परम्परागत इतिहास में इस जलप्लावन से पूर्वकाल के हमारे पूर्वजों के कुछ नाम दिये हैं जिनको हम आदि युग में होना कहते हैं। छोड़ दो युगों का नाम—यदि यह समझ में नहीं आते और जलप्लावन का काल भी यदि समझ में नहीं आता कि उसको २१ लाख १५ हजार वर्ष हुये, तो उसे भी अभी लिख दो, यह काल अभी निश्चित नहीं हो सका है। उसको बिना निश्चित किये भी, हम अपना इतिहास लिख सकते हैं।

(१) **जलप्लावन से पूर्व के काल में कौन-कौन** महापुरुष हुये जैसे स्वायम्भव मनु और उसकी पत्नी शतरूपा उनके दो पुत्र प्रियव्रत व उदानपाद और तीन पुत्रियां। इसी काल में ऋयवदेव और उनके पुत्र भरत आते है। ऋयवदेव जैनियों के प्रथम तीर्थंकर हैं और जैनी उनके पुत्र भरत से भारत देश का नाम बताते हैं फिर ध्रुव आते हैं जिनकी कहानी हम आज भी कहते हैं, फिर बेन, पृथ, दक्ष आदि के नाम आते हैं। भारतीय इतिहास की एक कम से कम अस्पष्ट-सी झलक हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाती है।

(२) **जलप्लावन से महाभारत युद्ध तक का** इतिहास बहुत विस्तृत रूप में महाभारत व पुराणों में मिलता है। कितने ही राजाओं और राज्यों, नगरों की स्थापना, सूर्यवंशी, चन्द्र-वंशी प्रतापी व चक्रवर्ती राजाओं के नाम मिलते हैं। वंशा-वलियां नहीं नामावलियां तो मिलती हैं—यह सब लिखा जा सकता है और राष्ट्र की प्रेरणा का स्तोत्र बन सकता है।

(३) **फिर महाभारत युद्ध से गुप्त वंश तक तथा** उसके बाद मालवा के विक्रमादित्य व शालिवाहन तक तो क्रमबद्ध इतिहास ही मिलता है। पूर्ण वंशावलियां मिलती हैं।

हम अपने देश की परम्पराओं से अनभिज्ञ होकर इतिहास नहीं लिख सकते हैं। हमारे देश में समाज अथवा राष्ट्र का जन्म युरोपियन नेशन व समाज से भिन्न प्रकार से हुआ। हमारे देश के प्राचीन ऋषियों और मनीषियों ने एक ऐसे चिन्तन को जन्म दिया जिसने यहां के रहने वाले हर व्यक्ति पर प्रभाव डाला। व्यक्ति बना, समाज बना, और वह चिन्तन इस देश के रहने वालों को एक रूप में ढाल सका। यह चिन्तन (दर्शन) ही भारतीय संस्कृति का मूल आधार है। अनेकता में एकता भारतीय मनीषियों की विचार परम्परा की विशेषता रही। इस मानसिक चिन्तन से ओत-प्रोत हमारे ऋषियों और मुनियों ने एक कट्टरता रहित, सर्वसमावेशी जीवन-धारा (धर्म) को जन्म दिया। जिसमें उच्च से उच्च विचारक के लिये भी स्थान है और जंगल के वासी अज्ञानी के लिये भी। जहाँ वेदों में एक ईश्वरवाद ऋषियों और मुनियों की दिखाई देता है। जिसकी प्राप्ति योग-साधन और ज्ञान द्वारा सम्भव है, वहाँ जनसाधारण के लिये वही एक ईश्वर विभिन्न स्वरूपों में, विभिन्न देवी और देवताओं के रूप में हर मनुष्य की रुचि और कल्पना अनुसार उसकी आत्मा को सन्तुष्ट करता हुआ दिखाई देता है। साधारण मनुष्य से भी नीचे जो वनवासी हैं उन्हें वह प्रकृति से विभिन्न रूपों के, पाषाण की हर बटिया में, जीव और जन्तु यहाँ तक कि सर्प के रूप में भी, वृक्ष और पौधों के रूप में भी, उसी एक परम-आत्मा का बोध होता अनुभव होता है, और वह जो कुछ अनुभव कर सका, उसी स्थिति से, वहीं से, यह जीवनधारा

उसको ऊँचा उठाने का प्रयत्न करती है। यहाँ कुछ थोपा नहीं जाता, विकास किया जाता है, खण्डन नहीं शुद्ध किया जाता है। जो सांप को पूजते हैं लिंग को पूजते हैं, किसी भी पदार्थ को पूजते हैं। बस उसको यही बताकर कि यह सब परमात्मा के स्वरूप हैं, एक बना देते हैं। ऐसे सर्व समावेशी चिन्तन ने भारत की विभिन्न जातियों यहाँ तक कि जंगली जातियों के मनुष्यों को भी एकरूप कर दिया। यह दर्शन, यह जीवनधारा वनवासियों से लेकर महान चिन्तकों तक को, एकरूप में ढाल सकी। यहाँ न रूप का भेद, न रंग का भेद, न यूरोप के समान कबीलों का वह रूप जिनमें अलग पहिचान का आग्रह या दूसरे कबीले को नष्ट कर पचा जाने का इतिहास, न धार्मिक अत्याचार और न धार्मिक युद्ध दिखाई दिये। यूरोप में इन कबीलों को जोड़ने का काम राज्य ने किया। विशेष रूप से अन्य राज्यों से युद्ध करके चिन्तन ने नहीं, अतः राज्य व राष्ट्र एक बात समझा गया और उस राज्य के अन्दर जो कबीले हैं वह Nationalities कहलाईं। भारत में जन-जन को जोड़ने में राज्य सत्ता का उपयोग नहीं हुआ। यहाँ तो यह काम 'कला' और 'साहित्य' द्वारा किया गया। 'कला' द्वारा हर वस्तु जीवित हो उठी। परमात्मा की शक्ति विभिन्न रूपों द्वारा हजारों देवी देवताओं के रूप में जन-जन के हृदय में समाई, हिमालय, गंगा, यमुना सभी उद्धार करने वाली देवियां बन गईं, यह देश भारत माता—पूज्य जननी—के रूप में दिखाई दिया और हजारों साहित्यिक कथाओं द्वारा सभी भारतीय वनवासी से लेकर योगी तक एक भावना से रंगे दिखाई देते हैं। लोक-गीत, लोक-नृत्य, गुफाओं में बनी आदम चित्र-कारी से लेकर अद्वितीय अजन्ता की महान कृतियों तक, कुल भारत में एक एकता का अनुभव करता हुआ इस भारत-माता के पुत्रों व पुत्रियों के रूप में दिखाई देता है।

स्मिथ ने भारत का इतिहास सिकन्दर के आक्रमण से प्रारम्भ किया था, आज हमारा इतिहास सिन्धु-घाटी की सभ्यता से प्रारम्भ होता है। १९२० ई० में रावी घाटी में स्थित हड़प्पा की खुदाई श्री माधोस्वरूप वत्स व श्री दयाराम साहनी के नेतृत्व में हुई, फिर १९३२ ई० में श्री राखलदास बनर्जी ने सिन्ध-घाटी में स्थित मोहन-जो-दाड़ों को खुदवाया, वहाँ भी

हड़प्पा जैसा प्राचीन सभ्यता का केन्द्र निकला, अतः इस सभ्यता को सिन्धु-घाटी सभ्यता नाम दिया गया। यह सभ्यता ताम्रयुगीन सभ्यता मानी गई (यह पाश्चात विद्वानों ने काल गणना निकलने के पैमाने माने हैं जैसे एक ही धातु एक काल में उपयोग होती हो) और इसे ईसा से ३०००–४००० पूर्व का समय दिया गया। इस सभ्यता को वैदिक सभ्यता से पूर्व की सभ्यता बताया और कहा गया कि यह सभ्यता को आर्यों ने आक्रमण कर नष्ट कर दिया और तब आर्य भारत में पैर जमा पाये, और उसके बाद वैदिक सभ्यता का उदय हुआ, और वेद आदि रचे गये। मैक्समूलर ने आर्यों का आक्रमण १५०० ईसा पूर्व बताया और वेदों की रचना १२०० ईसा पूर्व बतायी अब हमारी गणना कुछ ऊपर खिसक गई है। और स्वतन्त्र भारत की सरकार के प्रथम शिक्षा मंत्री की अध्यक्षता में वेदों का काल २०००–१५०० ईसा पूर्व हो गया।

यहाँ से पाश्चात्य विद्वानों का भारत में आर्य व द्रविड़ के बाँटने की विचारधारा प्रारम्भ होती, रंग के आधार, शरीर की बनावट पर दो जातियां बतादीं। काला द्रविड़, गोरा आर्य, राम और कृष्ण तो काले थे फिर वह आर्य कैसे, अभी-अभी शरीर त्यागने वाले श्री राम चन्दर जो तमिलनाडु के मुख्य-मंत्री, वह तो बहुत सुन्दर गोरे तथा ऊँची नाक वाले थे, फिर द्रविड़ कैसे ? भारत की समाज रचना से अनभिज्ञ होने के कारण और सम्भवतः इस देश में फूट डालकर राज्य करने की इच्छा ने, इन निम्नलिखित कारणों से उस सिन्धु घाटी सभ्यता को द्रविड़ सभ्यता अनआर्य सभ्यता बताया :—

(१) वैदिक आर्य सभ्यता ग्रामीण सभ्यता थी, यह नगरीय है, जैसे आर्य नगरों में रहते ही नहीं थे।

(२) सिन्धु घाटी सभ्यता में मूर्तियाँ निकलीं, लिंग पूजा निकली जो आर्य नहीं करते थे, उसमें समाधि व शिव पूजा भी निकली।

(३) सिन्धु घाटी सभ्यता में ताँबा का प्रयोग होता था अश्व भी नहीं है और शिरस्त्राण भी नहीं है।

धीरे-धीरे सिन्धु-घाटी सभ्यता के अवशेष पूरे पंजाब, राजस्थान व गुजरात तक निकले, तब यह विचार आया कि यह सभ्यता सरस्वती महान नदी की सभ्यता है। आज इसके अविशेष बंगाल तक पूरे उत्तर भारत में मिले हैं, इसके विकास के क्रम भी मिले हैं। पाकिस्तान के डा० ए० एच० दानी का यह अनुसन्धान कि बिलोचिस्तान से लेकर बिहार तक यह हड़प्पा सभ्यता फैली हुई थी और इसमें विभिन्न स्थानों पर यज्ञशालायें भी मिली हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि यह सिद्धान्त कि आर्यों ने आक्रमण कर इस सभ्यता को नष्ट किया गया गलत है। यह सभ्यता किसी प्राकृतिक जलप्लावन द्वारा नष्ट हुई।

यह जलप्लावन कितना व्यापक था जिससे पूरा क्षेत्र प्रभावित हुआ, सरस्वती लोप हुई। सरस्वती के लोप होने की आज खोज हो रही है। जो उपगृह पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाते हैं, उनमें से एक ने सरस्वती की पुरानी धारा के रास्ते का चित्र खींचा, तो मालूम हुआ कि यह विशाल नदी शिवालिक–हिमालय की पहाड़ियों से निकलकर, बीकानेर आदि घूमती हुई गुजरात को खाड़ी में गिरती थी। कितने लाख या करोड़ वर्ष हुये इस घटना को अभी मालूम नहीं।

पाकिस्तान के पुरातत्व विभाग के अधिकारी की खोज अभी हमने देखी, अब भारत के एक पुरातत्व विशेषज्ञ का सिन्धु-घाटी सभ्यता पर एक लेख जो उन्होंने कई वर्ष पहले लिखा था उद्धरित करते हैं। यह विद्वान हैं। स्वर्गीय पद्मश्री डा० विष्णु वाकणकर जी उज्जैन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे, और उन्होंने स्वयं कई खुदाइयों का नेतृत्व किया, अभी २ वर्ष हुये संयुक्त राज्य अमेरिका के विश्वविद्यालयों के निमन्त्रण पर वहाँ व्याख्यान देने गये, तथा 'सरस्वती की खोज' का अभियान का भी नेतृत्व किया, जिसकी विस्तृत रिपोर्ट अभी नहीं आ पाई है। वह जब अमेरिका गये तब की एक घटना सुनाते थे, कि उन्होंने वहाँ पाश्चात्य विद्वानों से पूछा कि मेरे सिर आदि की रचना की परीक्षा कर बताइये कि मैं द्रविड़ जाति का हूँ या आर्य। तब सबने उनकी परीक्षा कर यह नतीजा निकाला कि वह आर्य जाति के हैं, तब उन्होंने उनको बताया कि वह कितनी ही पीढ़ियों से अपने वंश को द्रविड़ ही जानते आये हैं। ऐसा भ्रामक भेद

आपने खड़ा किया है। देखिये वो सिन्धु-घाटी की सभ्यता पर क्या लिखते हैं :—

सिन्धु-घाटी की सभ्यता :—

सन् १९२२ ई० में जब इसकी खुदाई हुई, तब प्रश्न उठा कि यह सभ्यता कहाँ जन्मी थी, और फिर सिन्धु-घाटी में कहाँ से आई।

आर्यों को बाहर से आने वाला मानने वाले विद्वानों की निगाह पश्चिम की ओर गई और उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि इस सभ्यता का जन्म अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान या मकरान अथवा उसके भी पश्चिम में हुआ।

किन्तु १९४७ ई० के बाद इस सभ्यता के अवशेष गंगा नदी की घाटी में सहारनपुर जिले के बहादुराबाद, मेरठ जिले के आलमगीरपुर, नामक स्थानों से लेकर गुजरात में लोथल व रंगपुर, राजस्थान में कालीसंगल, हरियाणा में रोपड़, पटियाली आदि स्थानों, यहाँ तक कि नर्मदा के तट पर भी प्राप्त हुये हैं। रोपड़, पटियाली, कालीसंगल, रंगपुर, लोथल आदि सभी स्थान ऋग्वेद में वर्णित सरस्वती नदी के प्राचीन प्रवाह पर पाये जाते हैं।

जौहर और सोथी नामक स्थानों पर इस सभ्यता के अवशेष मिले हैं। यह दोनों ही स्थान मनुस्मृति में लिखी 'हृषद्वती' नदी आधुनिक चेतांग नदी के किनारे पर स्थित हैं।

कालीसंगल के प्राप्त अवशेषों से पुरातत्व विद्वान इस नतीचे पर पहुँचे हैं कि हरप्पा व मोहनजोदाड़ो की सभ्यता की विकास की पहली कड़ियाँ यहाँ विद्यमान हैं।

अतः सिन्धु-सभ्यता का विकास सरस्वती नदी की घाटी में होना बिल्कुल निश्चित होता है। वहाँ से सिन्धु-घाटी में फैली, यह बाहर से नहीं आई।

सरस्वती व हृषद्वती से घिरे हुए ब्रह्मवर्त को ही मनुस्मृति में 'देवयेनि' कहा गया है, यहीं यज्ञ प्रधान संस्कृति का उद्गम है। यहीं से फैलकर यह संस्कृति ब्रह्मर्षि देश, मध्य देश, व आर्यवर्त की सीढ़ियों को पार करती हुई सर्वत्र फैली।

ऐ० डी० पुलस्कर, के० एन० शास्त्री, डा० ब्रह्म प्रकाश आदि भारतीय विद्वानों ने ऋग्वेद द्वारा प्रस्तुत साक्षों के साथ हड़प्पा कालीन अवशेषों का अध्ययन करते हुये, उनकी सभ्यता को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है। घोड़े की अभाव की बात को भी इन विद्वानों ने चुनौती दी है। अतः यह बात अब पूर्ण रूप से प्रमाणित हो चुकी है कि यह वैदिक सभ्यता का ही रूपान्तर है और ऋग्वेद के बाद की है।

पाश्चात् विद्वानों ने इसको आर्यों के बाहर से आने से पहले की सभ्यता कहकर द्रविड़ों से जोड़ा। गलत सिद्ध होने पर यह प्रश्न उठा कि फिर इसको किसने नष्ट किया। मार्शल आदि विद्वानों का कहना है कि आर्य आक्रमण ने इसे नष्ट किया, परन्तु अब अमेरिकी भूगर्भ-शास्त्री डेल व भारतीय भूगर्भ-शास्त्री एम० आर० साहनी का कहना है कि इस सभ्यता का विनाश आक्रमण से नहीं, प्रलयंकर बाढ़ से हुआ, जो भारतीय परम्परा से भी पुष्ट होता है। जलप्लावन की कथा, सरस्वती का अचानक लोप होना इसका प्रमाण है।

इन अकाट्य तर्कों का उत्तर न होने पर कुछ पाश्चात्य विद्वान यह बहाना देकर कि हड़प्पा लिपि अभी पढ़ी नहीं जा सकी इसलिये इस प्रश्न को खुला (Open) ही रहने दो। कुछ विद्वानों ने इस हड़प्पा लिपि को तमिल लिपि से जोड़ा, फादर हीरास ने इसे द्रविड़ परिवार की लिपि कहा और इस प्रकार द्रविड़ सभ्यता को आर्यों से पहिले बताया।

परन्तु पिछले ५० वर्षों की खोजों ने इस बात को गलत सिद्ध कर दिया। श्री सुनीति कुमार चटर्जी ने फादर हीरास पर टिप्पणी करते हुये लिखा है कि ५०० ई० में जन्मी तामिल लिपि २५०० ईसा० पूर्व में विद्यमान हड़प्पा लिपि से कैसे जोड़ी जा सकती है। ३००० वर्ष के इस अन्तर का क्या उत्तर है। एस० एस० रेय ने अपने गहन अध्ययन से हड़प्पा लिपि

को वैदिक लिपि सिद्ध किया है और उसे ब्राह्मी लिपि का पूर्वज बताया है। डा० राव ने इस खोज को आगे बढ़ाया। १९५४ ई० में सौराष्ट्र के लोथल व रंगपुर नामक स्थानों से हड़प्पा सभ्यता के अवशेष जमा किये और करीब ३००० मुद्राओं में से १८०० मुद्राओं का १८ वर्ष तक गहन अध्ययन भारत, फ्रांस व अन्य देशों में जाकर प्राचीन लिपियों का तुलनात्मक अध्ययन कर १९७८ में यह निष्कर्ष निकाला कि हड़प्पा लिपि वैदिक लिपि है और ब्राह्मी लिपि की जननी है। उन्होंने हड़प्पा कालीन मुद्राओं पर 'हस्त द्वीप' दक्षद्वीप' 'पन्तद्वीप' 'मद्रमद्वीप' जैसे संस्कृत नाम पढ़े। ऋग्वेद में वर्णित 'दाश राज्य' जैसे महासंघ के समान पाँच या छः जातियों व राजाओं के संघ का उल्लेख भी उन्हें मिला।

अतः आज समय आ गया है कि भारतीय विद्वान इतिहास का पुर्नलेखन करें और प्रमाण सहित लिखें कि हमारे पूर्वज बाहर से नहीं आये थे। हड़प्पा (सिन्धु-सभ्यता) आदि इसके प्रमाण हैं। वह आक्रमणकारी नहीं थे उन्होंने किसी का विध्वंस कर यह देश प्राप्त नहीं किया।

सिन्धु-सभ्यता में पाये कंकालोंका जब परीक्षण हुआ तब वह कथित आर्य व द्रविड़ दोनों प्रकार के निकले, एक मुद्रा पर पशुपति शिव की प्रतिमा भी अंकित है। और एक मुद्रा पर वेदमंत्र की चित्रलिपि भी है। दो पक्षी एक पेड़ पर बैठे हैं, दोनों सखा हैं। इनमें एक स्वादु फल का भक्षण कर रहा है और दूसरा फल को न खाता हुआ केवल उसे देख रहा है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
त्योस्यः पिप्पलं स्वाद्वत्तयनश्नन् अन्तो अभिचाकशीति॥

ऋग्वेद १।१६४।२०

जलप्लावन का काल सतयुग के अन्त व त्रेता के प्रारम्भ में पड़ता है और २१ लाख १५ हजार वर्ष होता है।

महाभारत में वर्णन आता है कि कृष्ण के बाद द्वारका समुद्र में डूब गई। किसे विश्वास था कि यह घटना सत्य निकलेगी। द्वारका तो अब

भी बसी हुई है। वह अभी कुछ वर्ष हुये द्वारका के पास जब गैस व तेल की खोज हो रही थी, मालूम हुआ कि समुद्र के गर्भ में एक नगर पड़ा हुआ है। तब हमारे पुरातत्व विभाग ने उसे खोज निकाला पर फिर उसका काल वही ३५०० वर्ष दिया गया। महाभारत के बाद की घटना है जिसे ५००० वर्ष से अधिक हो चुके। परन्तु पश्चिम को गुरु मानने वाले महाभारत काल ५००० वर्ष नहीं मानते।

कलियुग का प्रारम्भ ३१०१ या ३१०२ ईसा पूर्व में हुआ यह भारत में अंग्रेजों के द्वारा भ्रम फैलाने से पूर्व सभी मानते थे और हर प्राचीन गणना से यह तथ्य सिद्ध होता है :—

(१) **ऐहोली के पुलकेशी II के शिलालेख से** ५५६ शक संवत में कलि के ३७३५ वर्ष व्यतीत हो चुके। अर्थात् ५५६+७८= ६३४ ई०।

३७३५—६३४=३१०१ ईसा पूर्व कलियुग का आरम्भ।

(२) **आइने-ए-अकबरी** में अब्बुल फजल लिखता है कि आज **अकबर के राज्य** के ४० वें वर्ष में युधिष्ठिर के बाद ४६८६ वर्ष हो गये। अकबर के राज्यसिंहासन से वह दीन संवत प्रारम्भ होना बताता है। अर्थात् (१५५५+४०)=१५८५ ई० में।

४६८६—१५८५=३१०१ ईसा पूर्व का समय।

१ युधिष्ठिर के पश्चात कलियुग का प्रारम्भ।

(३) **कलहण (राजतरंगणी वाले) व वारह मिहर**—एक दूसरे आधार पर महाभारत काल की गणना करते हैं पुराणों में एक श्लोक आता है कि युधिष्ठिर के मरने के २५२६ वर्ष बाद शक संवत प्रारम्भ हुआ। यह कौन-सा शक संवत है, ईसा संवत ७८ वर्ष बाद वाला, या अन्य। इस पर मद्रास के श्री V. Thiruvanktachyra का कहना है कि यहाँ आन्ध्र वंश में ५५० ईसा पूर्व एक शक संवत प्रारम्भ हुआ था उससे अभिप्राय हैं बाद वाले शक संवत पर पुराण ही कहां थे? और युधिष्ठिर ने ३६ वर्ष राज्य कर २५ वर्ष वनों में बिताया और तब उनकी मृत्यु हुई। अतः २५२६+५५०=३०७६ ईसा पूर्व युधिष्ठिर की मृत्यु काल।

इससे २५ वर्ष पहिले कलियुग आया।

३०७६+२५=३१०१ कलियुग प्रारम्भ।

युधिष्ठिरने ३६ वर्ष राज्य किया, उससे पहिले महाभारत हुआ

३१०१+३६=३१३७ ईसा पूर्व महाभारत काल।

परन्तु अभी हमारे विद्वानों को अपनी ऐतिहासिक-ग्रन्थों पर विश्वास नहीं जमा है। श्री श्रीराम साठे ने अपनी पुस्तक 'महाभारत युद्ध वर्ष की खोज' में १२० विद्वानों के मत इस पर संग्रह किये हैं, इनमें से ६० विद्वानों ने ३३००-३००० ईसा पूर्व का समय बताया, ४० विद्वानों ने १५००-१००० ईसा पूर्व और शेष ने अन्य।

आज के इतिहास का एक और गुण

पुराणों के अनुसार :—

वंश	राज्यकाल	सन्
नन्द	१०० वर्ष	१६३४-१५३४ ई. पूर्व
मौर्य	३१६ ,,	१५३४-१२१८ ,,
शुंग	३०० ,,	१२१८- ९१८ ,,
कण्व	८५ ,,	९१८- ८३३ ,,
आन्ध्र	५०६ ,,	८३३- ३२७ ,,
गुप्त	२४५ ,,	३२७- ८२ ,,

स्मिथ द्वारा निर्धारित :—

वंश	राज्यकाल	सन्	आज जो पढ़ाया जाता आधुनिक
नन्द	४६ वर्ष	३७२-३२६ ई० पूर्व	
मौर्य	१३७ वर्ष	३२६-१८९ ई० पूर्व	
शुंग	११२ वर्ष	१८९-७७ ई० पूर्व	
कण्व	४५ वर्ष	७७-३२ ई० पूर्व	
आन्ध्र	२८९ वर्ष	३२-२५७ ई०	
गुप्त	१४९ वर्ष	२५७-४०६ ई०	३१९ ई० से ५५० ई० तक

आज जो इतिहास हमारे देश में चल रहा है वह गुप्त वंश का काल (जैसा ग्रन्थ है **'गुप्त सम्राट और उनका काल'** श्री उदयनारायण राय द्वारा लिखित) कुल २३१ वर्ष सन् ३१९ ई० से ५५० ई० तक मानता है। और चन्द्रगुप्त द्वितीय को जिनकी उपाधि विक्रमादित्य थी उनका काल ३८० ई० से ४१२ ई० तक मानता है। इस इतिहासकार का कहना है कि यही चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य 'शकारि' शको को परास्त करने वाला था, इसकी उज्जैन दूसरी राजधानी थी और नवरत्न जिनमें कालिदास भी थे इसी के दरबार को सुशोभित करते थे।

यह सब इसलिये हुआ कि हमारे विद्वान इतिहासकारों को पुराणों पर तो विश्वास नहीं, उनका मार्गदर्शन स्मिथ कर रहे थे और अलबरूनी का कहीं लेख मिल गया कि गुप्त संवत शक संवत के २४१ वर्ष बाद प्रारम्भ हुआ।

लेकिन क्या परिणाम हुये विक्रम संवत के प्रारम्भ करने वाले मालव गण के प्रधान शकारि विक्रमादित्य जो गन्धर्वसेन के पुत्र थे जिन्होंने शकों पर निर्णायक विजय पाई थी और उसी विजय के उपलक्ष में ५६ ईसा पूर्व यह विक्रम संवत चलाया था, तथा उसके पश्चात १३५ वर्ष बाद शकों की समस्या को ही हिन्दू धर्म में उनको लेकर समाप्त करने वाले शालिवाहन दोनों के नाम व काम समाप्त हो गये।

पर इस क्षति के साथ उसका क्या होगा जो कि अरब देश बैठा हुआ एक अरबी भाषा का कवि इस्लाम के प्रारम्भ होने से सैकड़ों वर्ष पूर्व भारत के विक्रमादित्य की गाथा गा रहा था।

भारत में तो दो ही विक्रमादित्य इस्लाम के प्रारम्भ होने से पहिले हुये। एक समुद्रगुप्त का पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य जो पुराणों के अनुसार २६६ ई.पू. से २३४ ई.पू. हुआ और जिसने अपने पिता के साम्राज्य का सुख भोगा। वह साम्राज्य पश्चिम में सीरिया तक फैला और अरब उसके अन्दर आता था। दूसरा विक्रमादित्य उज्जैन का मालवगण राज्य का हुआ जिसने शकों को जीता और कुल भारत पर राज्य किया और हो सकता है उसने

अपने दूत व प्रचारक आदि अरब तक भेजे हों। पर आधुनिक इतिहास-कारों ने दोनों समाप्त कर दिये।

विक्रमादित्य के सम्बन्ध में दो बातें परम्परा से प्रसिद्ध चली आ रही हैं। (१) उन्होंने राम-जन्म स्थान पर भव्य मन्दिर निर्माण किया था जो बाबर ने तुड़वाकर बाबरी मस्जिद में बदल दिया। (२) उन्होंने मक्का में शिव-मन्दिर बनवाया जो आज काबा है। यह विक्रमादित्य इन दोनों में कौन था प्रश्न उठता है ?

सैर-उल-ओकुल—टर्की की राजधानी इस्तंबूल में एक बहुत बड़ा पुस्तकों का ग्रन्थालय था। सुल्तान सलीम के काल में "अरबी-काव्य संग्रह" से १७४२ ई० में एक पुस्तक तैयार की गई, उसका नाम 'सैर-उल-ओकुल' है। इस पुस्तक के तीन भाग हैं। पहिले भाग में इस्लाम पूर्व कवियों की रचनायें व उनकी संक्षिप्त जीवनी दी है। दूसरे भाग में मुहम्मद के तुरन्त पश्चात् के कवियों की **बानी** और तीसरे में खलीफा हारुन-अल-रशीद तक के कवियों की **बानी** है। इसमें **बानी** शब्द देखिये **वाणी** का अपभ्रंश है। इस 'काव्य-संग्रह' का सम्पादक हारुन-अल-रशीद का दरबारी कवि अबु अमीर है।

'सैर-उल-ओकुल' का प्रथम आधुनिक संस्करण १८६४ ई० में बर्लिन (जर्मनी) में छपा, दूसरा संस्करण १८८२ में बेरुत में छपा। इस पुस्तक में मक्का (काबा) में हर वर्ष होने वाले एक उत्सव 'ओकज' का वर्णन भी दिया है जिसमें कवि लोग अपनी कवितायें सुनाते थे और प्रख्यात अरबी कवियों को सम्मानित किया जाता था। जो कविता सबसे अच्छी होती वह स्वर्ण थाल पर अंकित कराकर काबा मन्दिर के अन्दर टांगी जाती थी, द्वितीय चांदी के थाल पर और तृतीय ऊँट की खाल पर मन्दिर के बाहर टांगी जाती थी।

जब मुहम्मद व उसके अनुयायियों ने काबा की लूट की तो हसन-बिन साविक नाम का एक कवि जो नया-नया मुसलमान बना था, लटकी हुई कविताओं को लूटकर घर ले गया, वह कवितायें बहुत दिनों बाद मय थालों

के हारुन-अल-रशीद के दरबार में आईं, तब उसने अपने राज-कवि को उनके संग्रह का हुक्म दिया। उसमें **जिप्हम बिनतोई** की भी कवितायें थीं जिसने तीन वर्ष लगातार प्रथम-पद पाया था। उनमें से एक कविता में विक्रमादित्य का गुण गौरव था। यह कवि मुहम्मद से १६५ वर्ष पूर्व हुआ है, और इसकी कविता 'सैर-उल-ओकुल' में से लेकर उज्जैनी में विक्रम संवत् के २००० वर्ष पूरे होने पर सन् १९४६ ई० में जो उत्सव मनाया गया 'उसके स्मृति अंक' में प्रकाशित हुई। यह कविता प्राचीन अरबी में है इसका अनुवाद इस प्रकार है :—

'भाग्यशाली है वह जो विक्रमादित्य के शासन में जन्मे (या जीवित रहे) वह सुशील, उदार, कर्त्तव्यपरायण शासक प्रजाहित दक्ष था, पर उस समय अरब परमात्मा का अस्तित्व भूलकर वासना-सक्त जीवन बिता रहा था—किन्तु उस अवस्था में सूर्योदय जैसा ज्ञान और विद्या का प्रकाश दयालु विक्रम राजा की देन थी, जिसने पराये होते हुये भी हमसे कोई भेदभाव नहीं बरता, उसने निजी पवित्र (वैदिक) संस्कृति हममें फैलाई और निजी देश से विद्वान, पण्डित, पुरोहित भेजे..... । पवित्र ज्ञान की प्राप्ति हुई और सत्य का मार्ग दिखाया।

समय की पुकार है कि स्वतन्त्र भारत के वासी अपने कर्त्तव्य को समझें। भारतवर्ष पृथ्वी की सब सभ्यताओं का जन्मदाता है। यहाँ की सभ्यता न केवल प्राचीनतम है, बल्कि वह सबकी जननी है। भारत में कोई ऐसा काल नहीं आया जब यहाँ के ज्ञान-विज्ञान की परम्परा टूटी हो। हम वेदों जैसे प्राचीनतम ग्रन्थ के उत्तराधिकारी हैं, प्राचीनतम भाषा संस्कृत के ज्ञाता हैं, प्राचीनतम धर्म व संस्कृति के पालनकर्ता हैं। सबसे पुराना धर्म-शास्त्र, मनुस्मृति, हम रखते हैं और हमारे इतिहास की परम्परा अक्षुण्ण है। भारत में किसी भी काल को प्रागैतिहासिक काल कहना अपनी अज्ञानता को ही प्रगट करना है। उन मनवन्तरों का समय देखो जो जलप्लावन से पहिले आता है। स्वायम्भव मनु के काल में राज्य संस्था का विकास नहीं हुआ था, न राजा

था न प्रजा, सभी अपनी-अपनी सात्विक बुद्धि से (धर्म से) काम करते थे इसीलिये पुराणों में उसे 'विराज' कहा गया है। फिर वेन राजा का वर्णन आता है जो क्रूर व अत्याचारी राजा कहलाया उसको ऋषियों ने मंत्रपूत कुशाओं द्वारा मार डाला। वेन पुत्र पृथु राजा बनते समय प्रतिज्ञा करता है कि 'भूमि और जनता को ब्रह्म मानकर मैं सदा उसका पालन करूँगा—और स्वेच्छाचारी कभी न होऊँगा।' यह वर्णन क्या हाब्स, लॉक व रूसो के वर्णन से भी अधिक स्वाभाविक नहीं लगता।

जलप्लावन से महाभारत काल तक तो अनेक चक्रवर्ती राजाओं के जैसे मान्धाता, हरिश्चन्द्र, राम, भरत आदि के वर्णन आते, कितने ऋषि व महर्षियों का उस काल में वर्णन व विचार मिलते हैं। कितने महापुरुष जैसे कृष्ण आदि इस काल में हुये और कितना ज्ञान है उनके बारे में हमारा, कि आज भी कहें कि वह प्रेरणा देते हुये मालूम होते हैं। और महाभारत के बाद तो क्रमबद्ध वंशावलियां मिलती हैं। क्या यह इतिहास यदि बच्चों को पढ़ाया जावे तो उनमें गौरव का भाव, राष्ट्र-निष्ठा, संस्कृति से लगाव व जीवन-धारा से एकता उत्पन्न नहीं हो सकती। याद रक्खो महर्षि दयानन्द सरस्वती का वाक्य 'सुराज्य से स्वराज्य अच्छा होता है।' इसी प्रकार विदेशियों द्वारा लिखे इतिहास से 'अपनों द्वारा लिखा इतिहास' अच्छा होगा। फिर स्मरण करो कि हमारे यहाँ इतिहास लिखने वाले 'व्यासों की परम्परा' थी, जिन्हें न नाम चाहिये था, न यश न धन। कोई प्रलोभन नहीं कि उनकी लिखी पुस्तकें विद्यालयों में पढ़ी जायेंगी और उन्हें मान्यता मिलेगी। वह केवल राष्ट्र निर्माण के कर्त्तव्य भाव से लिखते थे। क्या हमारे देश के युवक विद्वान इतिहासकार पुनः व्यास बनेंगे और इस परम्परा को चालू रखेंगे, आज बहुत आधुनिक विधियां निकल आई हैं तथ्यों की परीक्षा की जैसे 'कार्बन विधि' आदि उन सबका उपयोग करो, पर अपने प्राचीन साहित्य को श्रद्धा व विश्वास से परखो, क्योंकि वास्तव में उनके बगैर इतिहास लिखा ही नहीं जा सकता, वही एकमात्र प्राचीन इतिहास के स्रोत हैं। और वह बहुत उपयोगी भी हैं जैसे प्रो० प्रसाद ने वारह-मिहर की एक पुस्तक 'वृहत संहिता' में दिये इस ज्ञान से कि 'यदि अमुक वनस्पति

किसी क्षेत्र में हो तो उस क्षेत्र में पानी इतनी गहराई पर इस मात्रा में मिल सकेगा, और अमुक धातु भी होगी'—इसका लाभ उठाकर जल स्रोतों का पता लगाया।

राष्ट्र निर्माण के लिये तथा संसार से सम्बन्ध जोड़ने के लिये, भारत के इतिहास के पुनः लेखन की आवश्यकता है। क्या ? इस चुनौती को हमारे राष्ट्रप्रेमी बलिदानी युवक इतिहासकार स्वीकार करेंगे ?

॥ समाप्त ॥

पुस्तक में दी तालिकायें

	पृष्ठ
१. पुराणिक तालिका (औसत दिखाने वाली)	३६
२. जोन्स द्वारा निर्मित तालिका I	५४-५५
३. जोन्स द्वारा निर्मित तालिका II	५७
४. जोन्स की तालिका I, II व III की तुलना	५८
५. जोन्स की तालिका IV व II की तुलना	६०
६. तालिका पुराण, जोन्स व स्मिथ का मत दिखाती है	८२
७. जोन्स की पहली तालिका का पुराण से मुकाबला	१०६-१०७
८. पुराणों के आन्तरिक जांच की दो तालिकायें	१०८-११०
९. अशोक महान के शिला-लेख के राजाओं की तालिका	१३०
१०. पुराणों, स्मिथ व आजेक इतिहास की तुलनात्मक तालिका	१५५
११. स्वतन्त्र भारत की सरकार सम्मत तालिका	१६

हिन्दी हित-रक्षक समिति

'हिन्दी' को किसी पर थोपा नहीं जायेगा—जब तक हिन्दी अपने आपको ऐसा नहीं बना लेती कि सारा देश उसे मान्यता प्रदान कर दे तब तक अंग्रेजी जारी रहेगी—ऐसा इस देश में प्रायः सुनाई देता रहा है। इन सब सीमाओं को तोड़कर लखनऊ के एक अंग्रेजी स्कूलके प्राचार्य हबीबुल्ला ने हिन्दी को सूअरों और कुत्तों की भाषा कह दिया—यद्यपि उन छात्रों के साहस से उन महोदय की उसी समय पिटाई हुई परन्तु इस सब प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप आगरा के कुछ नव-जवानों के मस्तिष्क में हिन्दी को उसका अधिकार प्रदान कराने की बात आई। फलस्वरूप हिन्दी हित-रक्षक समिति का निर्माण हुआ।

समिति का प्रथम कार्यक्रम एक साइकिल यात्रा थी जिसमें १०० छात्रों ने भाग लिया जिनमें लगभग ५० आगरा सरोजिनी नायडू मैडीकल कॉलेज के थे। प्रथम कार्यक्रम की अपार सफलता के उपरान्त कार्यक्रमों का एक सिलसिला प्रारम्भ हुआ। जगह-जगह हिन्दी के अधिकार हेतु जागृति कार्यक्रम में 'धरनों' का आयोजन—माडल स्कूल योजना के विरोध में आगरा के आसपास १०० कि. मी. क्षेत्र में पत्रक आदि वितरित करके जागरण। २०० कि. मी. की साइकिल यात्रा—तीन बार रक्तदान शिविरों का आयोजन, शहीदों की स्मृति में कार्यकर्ताओं के रक्त से भारतमाता के चित्र का निर्माण कार्यक्रम चलते रहे।

इन समस्त जागरण कार्यक्रमों में समिति के कार्यकर्ता गांव-गाँव गये। सर्वाधिक प्रधानता से समिति के कार्यकर्ताओं ने छात्रों को यही समझाया कि किस प्रकार अंग्रेजी की अनिवार्यता को बनाये रखकर हिन्दुस्तान के ९० प्रतिशत छात्रों को प्रत्येक प्रतियोगिता से बाहर रखा जा रहा है।

अंग्रेजी की अनिवार्यता के रूप में इस देश के जनमानस का स्पष्ट विभाजन हो चुका है। लगभग ७ प्रतिशत परिवारों की ही स्थिति ऐसी है कि वह अपने एक बच्चे पर ७०० से लेकर ३००० रुपया प्रतिमाह खर्च कर सकते हैं तथा दूसरा वह वर्ग हैं जिसे ५०० से ७०० में पूरा घर चलाना है। शिक्षा के स्वरूप के इस तीव्र भेद के फलस्वरूप ऐसी हालातों का निर्माण हो रहा है कि सारे देश की अफसरी उन ७ प्रतिशत परिवारों के हिस्से में

हैं और चपरासीगिरी शेष ९३ प्रतिशत परिवारों के भाग में। कुछ इसके अपवाद भी हैं।

अतः हिन्दी हित-रक्षक समिति एक निश्चित उद्देश्य के साथ आगे बढ़ी कि अंग्रेजी के प्रकोप से पीड़ित समस्त भारतीय भाषाओं के माध्यम से देश में सर्वोच्च स्थान प्राप्ति सम्भव हो। अर्थात् वह समस्त परीक्षायें जो छात्र के भविष्य निर्माण हेतु आयोजित होती हैं—सभी का स्वरूप ऐसा हो कि हिन्दी, तमिल, तेलगू, बंगाली, असमी, मराठी तथा अन्य समस्त भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षित विद्यार्थी कभी ऐसा अनुभव न करे कि उसके माँ बाप यदि उसे अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्रदान कराते तब अधिक अच्छा रहता।

शताब्दी के प्रारम्भ में जब 'सावरकर' सरीखे स्वतन्त्रता सेनानियों ने भाषा की बात पर आन्दोलन किये तब उनकी अलग सार्थकता थी वह एक परतन्त्र देश की मजबूरी थी परन्तु स्वतन्त्रता के ४२ वर्ष उपरान्त इस दिशा में कार्य करना एक स्वतन्त्र देश के लिये शर्मनाक है।

वर्तमान में हिन्दी हित-रक्षक समिति 'केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड' द्वारा आयोजित प्री. मैडीकल, प्री. डेन्टल प्रवेश परीक्षा में अंग्रेजी माध्यम की अनिवार्यता के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में है। देश के प्रख्यात विधिवेत्ता डा. लक्ष्मी मल्ल सिंधवी इसके लिये अपना कीमती समय दे रहे हैं।

प्रकाशन क्षेत्र में :

पुस्तक प्रकाशन क्षेत्र में यह पुस्तक "भारतीय इतिहास पर दासता की कालिमा" प्रथम प्रयास है। "वर्तमान" निश्चित रूप से भविष्य का गर्भ है परन्तु यह भी सत्य है कि वर्तमान अतीत का परिणाम है। इतिहास की भूलों के परिणाम स्वरूप इस देश में एक ऐसा वातावरण निर्मित हुआ कि राष्ट्रीयता की प्रखरता समाप्त हुई अथवा नहीं हुई परन्तु उस पर 'धूल' की एक पर्त निश्चित रूप से चढ़ गई। देश के नवयुवकों को हमारे वैभवशाली इतिहास का ज्ञान हो जिससे कि वह अपने आत्म-विश्वास को बनाये रख सकें, यही इस प्रयास का उद्देश्य है।

हिन्दी हित-रक्षक समिति उ० प्र०

जन्म :
२८ अक्टूबर १९१०
(बदायूँ)

★

शिक्षा :
बी० एस-सी०,
एल-एल० बी०

★

भू० पू० प्रान्तीय
बौद्धिक प्रमुख राष्ट्रीय
स्वयंसेवक संघ

सियाराम सक्सैना (बाबूजी)

प्रकाशक :— हिन्दी हित रक्षक समिति
७, बाग फरजाना, आगरा—२

मुद्रक : मयूर प्रेस, 371/5 बद्री नगर, दरेसी रोड मथुरा.